अब्बास की

आठ

चुनी हुई कहानियां

ख्वाजा अहमद अब्बास

विषय-सूची

दुनिया की सबसे खूबसूरत औरत

एंग्लो-इंडियन लड़के ने, जो दरवाजे से लगा हुआ अपने बिस्तर पर बैठा था, अखबार में एक तसवीर दिखाते हुए अपने साथी से कहा, "लुक, मैन, माईओना पिंटो—वाट गर्ल, जो वर्ल्ड ब्यूटी कंटेस्ट में सेकंड आई है।"

उसके साथी ने, जो दीवार का सहारा लिए खड़ा सिगरेट पी रहा था और रेल की रफ्तार के साथ हलके-हलके झकोले खा रहा था, अख-बार लेकर तसवीर को ध्यान से देखा, और फिर ब्यूटी क्वीन के मुंह पर धुएं की पिचकारी छोड़ते हुए कहा, "न्नाह, मैन! ऐसी-ऐसी छोकरी हमने बायकला रेलवे इंस्टीट्यूट की डान्स नाइट में बहुत देखी है।"

और फिर दोनों अपनी परिचित लड़कियों के बारे में बातें करने लगे—स्टैला डी सूजा, जिसका 'बॉडी' मारलिन मनरो-जैसा है। और लूसी, जो रॉक ऐंड रोल में दुक्कम है। और जोज़ी, जो ज़रा मोटी तो है, मगर बड़ी स्मार्ट है, और हर वक्त हंसती रहती है।

और मैं, जो उनसे दो फुट के फासले पर खिड़की और एक मोटे लालाजी के बीच में फंसा बैठा था, और इसलिए उनकी बातें सुनने पर मजबूर था, सोच रहा था कि सौंदर्य प्रतियोगिताओं में जो लोग जज बनाए जाते हैं, उनको तो अपना निर्णय देने में बड़ी कठिनाई होती होगी। आखिर सुंदरता को किस कसौटी पर जांचा, नापा और तौला जा सकता है? क्या वह हर लड़की हसीन है, जिसकी कमर चौबीस इंच, सीना

चालीस इंच और कूल्हे बयालीस इंच हों ! यह फ़ैसला कौन कर सकता है कि मिस्री सुंदरी की काली आंखें ज़्यादा ख़ूबसूरत हैं, या आइसलैंड की सुंदरी की नीली आंखें ? बैल-जैसे बड़े दीदे ज़्यादा ख़ूबसूरत माने जाते हैं, या मस्ती-भरी अधखुली मंगोलियन आंखें ? काली ज़ुल्फ़ों और सुनहरे बालों में किसे अच्छा माना जाता है ? रंगत कौनसी पसंद की जाती है—फीके शलजम-जैसी सफ़ेद या पके हुए गेहुंओं की तरह गेहुंई, सांवली-सलोनी या आबनूस की तरह स्याह ? सुडौल क़दवाली यूनानी प्रतिमा-जैसी अमरीकन लड़की ज़्यादा आकर्षक है, या गुड़िया की तरह नन्हीं-मुन्नी चीनी या जापानी लड़की ? दुनिया की सबसे ख़ूबसूरत स्त्री कौन है, कहां है, क्यों है ?

रेल के सफ़र में मेरा दिमाग़ ट्रेन की रफ़्तार के साथ ही दौड़ता है। और थर्ड क्लास के डिब्बे में जब पैर फैलाने की जगह न हो, तो मैं ऐसे ही अटल और अमर दार्शनिक विषयों पर सोच-विचार करके वक़्त काटता हूं।

कुछ सवाल तो अख़बार के पृष्ठों में से मुझे झांकते हैं, और कुछ सवाल मेरे अंदर ख़मीर की तरह उठते हैं।

मैं कौन हूं, क्या हूं, और क्यों हूं ? हमारी मंज़िल क्या है ? दुनिया गेंद की तरह गोल है, या चौकोर और सपाट है ? दुनिया किधर जा रही है ? अपना देश किधर जा रहा है ? चलती हुई रेल की खिड़की में से देखो, तो यही लगता है कि हम तो अचल हैं और देश पीछे की तरफ़ भागा जा रहा है। शायद सारी दुनिया भी उलटे पैरों चल रही है। मगर दूसरे तरीक़े से सोचा जाए, तो आगे देखकर यह भी महसूस होता है कि बंजर और पथरीली ज़मीन से परे जो क्षितिज दिखाई देता है, जो शायद हमारा लक्ष्य है, उसकी तरफ़ हम साठ मील, या कम-से-कम पचास मील की रफ़्तार से भागे जा रहे हैं और हमारे दिलों की धड़कन और रेल की पटरियों की घड़घड़ाहट एक लय में बंधी हुई हैं।

हां, तो ऐसे ही अमर सवालों पर मैं सोच-विचार कर रहा था कि यकायक दुनिया की सबसे खूबसूरत औरत वहीं, उसी थर्ड क्लास के डिब्बे में, दूसरे किनारे पर बैठी नजर आ गई। उसको देखकर एक पल के लिए तो मेरे दिल की धड़कन ही बंद हो गई। मैंने सोचा कि आंखें मलकर देखूं कि यह मांस-मज्जा का शरीर है या मैं सपना देख रहा हूं। मगर इस भीड़ में भला यह कहां मुमकिन था? बायां हाथ खिड़की के साथ चिपका हुआ था, और दाएं हाथ पर लालाजी बैठे हुए थे। मैं वैसे ही पलकें झपकाता रहा। मगर यह सपना नहीं था। असलियत थी—रेल थी, जो तेजी से बंबई जा रही थी। थर्ड क्लास का दरजा था, जो खचाखच भरा हुआ था। मेरे बराबर में मोटे लालाजी थे। उनके बराबर में उनकी ललाइन थीं, जो डेढ़ फुट लंबे घूंघट में भी नजरें झुकाए बैठी थीं। उनके बराबर में लालाजी का बड़ा बच्चा हिंदी का 'चंदामामा' पढ़ रहा था। फिर लालाजी का छोटा बच्चा था, जो अपने बड़े भाई के हाथ से पत्रिका छीनने की कोशिश कर रहा था। फिर लालाजी की मझली लड़की थी, जो अपनी बोलनेवाली गुड़िया को कभी लिटाती थी, कभी उठाती थी—मगर रेल की धड़धड़ाहट में उसकी आवाज ही नहीं सुनाई देती थी। उसके बराबर में दूसरी तरफ खिड़की से लगी एक मोटी और काली क्रिश्चियन मेमसाहब बैठी थीं, जो बार-बार लालाजी की बच्ची को डांट रही थीं, "अरे बाबा, तुम नॉटी नाईं बनो। सीधे का माफक बैठो।" हमारे सामने की सीट पर एक पैबंद लगी हुई शेरवानी पहने, घुन्नी दाढ़ीवाले मुंशीजी थे और काले बुरके में लिपटी हुई उनकी बेगम थीं और उनके सात अदद बच्चे थे, जिनमें से सबसे छोटे को मुंशीजी की बीवी बुरके के अंदर दूध पिला रही थीं। और कोई ताज्जुब नहीं कि आठवां बच्चा उनके पेट के अंदर हो।

और उनके पीछे की सीट पर एक तरफ को खिड़की से लगे एक जटाधारी साधु महाराज आंखें बंद किए बैठे थे। खिड़की से आती हुई हवा में उनके सिर और दाढ़ी के लंबे-लंबे बाल उड़ रहे थे। उनके बराबर में बड़े यत्नपूर्वक कपड़े पहने हुए एक नौजवान बैठा था। बिल-

कुल ताज़ा इस्तरी की हुई पतलून, क्लिप लगा हुआ कालर, नक़ली रेशम की धारियोंदार टाई, कोट के कालर पर प्लास्टिक का एक फूल लगा हुआ, तेल से चमकते हुए बालों में बड़ी सावधानी से मांग निकाली हुई। वह या तो नौकरी के लिए कहीं इंटरव्यू के लिए जा रहा था, या वर-दिखावे में। उसके बराबर में तीन अधेड़ उम्र के आदमी इस भीड़-भाड़ में भी बड़ी लगन के साथ ताश खेल रहे थे। और उनके बाद में खिलती हुई रंगत और लंबे क़द का एक नौजवान था, जो अब सीट के नीचे से नाश्तादान निकालकर उसे दे रहा था, जो शायद उसकी प्रेमिका थी या पत्नी। और वही थी दुनिया की सबसे ख़ूबसूरत स्त्री। उसके बाद उस दरजे में कुछ नहीं था। सिर्फ़ खिड़की थी, और खिड़की में से दिखती भागती हुई दुनिया की जादू-भरी झांकी थी। और मैंने देखा कि आम के पेड़ों के नीचे मोर नाच रहे हैं और बिजली के तारों पर तोते बैठे हुए एक-दूसरे को प्यार-भरे ठोंगें मार रहे हैं और आसमान पर भूरे काले बादल छाए हुए हैं और काले बादलों को चीरकर सूरज की किरणों ने रोशनी का एक जाल बुन दिया है।

वह नाश्तेदान के प्याले अलग-अलग कर रही थी। और मैं उसे टकटकी बांधे देख रहा था। वह थी भी देखने की चीज़! ऐसी ख़ूबसूरत औरत मैंने दुनिया में कहीं नहीं देखी थी—न बंबई की फ़िल्म ऐक्ट्रेसों में, न दिल्ली के होटलों और क्लबों में आनेवाली सोसायटी लेडीज़ में, न बंगाल के स्टेज पर, न राजस्थान के रजवाड़ों के रंग-महलों में। लेकिन मैं यह न तय कर सका कि इस हसीन हस्ती के वे कौनसे अंग हैं, जो उसे दुनिया की सबसे ख़ूबसूरत नारी प्रमाणित करते हैं। उसकी रंगत गोरी नहीं, गेहुंआ थी, लेकिन उसके गालों पर एक मनहर लाली थी, जो रूज या पाउडर से पैदा नहीं हो सकती। बल्कि यह लाली नहीं, एक अजीब आंच थी—जैसे अंगीठी में जलते हुए अंगारों की प्रतिच्छाया गालों पर पड़ रही हो। हर बार जब वह भारी पलकें उठाकर अपने साथी की तरफ़ देखती थी, तो उसकी बादाम-जैसी गहरी काली आंखों में एक अजीब चमक पैदा होती थी। ऐसा लगता था कि उसके एक

अजीब अंदाज से अधखिले होंठ लिपस्टिक से मुक्त थे, जिंदगी की सबसे सुखदायक और सबसे कष्टदायक अनुभूति से परिचित थे। उसके लंबे घने काले चिकने बाल चोटी में गुंथे हुए थे। उसकी कलाइयों और हाथों में कोई जेवर नहीं था, सिर्फ जवानी का निखार था। साड़ी में से झांकते उसके मेंहदी लगे पांव नाजुक और छोटे-छोटे थे। लेकिन उससे ज्यादा नाजुक पांव और उससे ज्यादा सुडौल पिंडलियां मैंने देखी हैं, उससे कहीं ज्यादा खूबसूरत आंखें मैंने देखी हैं। फिर भी सम्मिलित रूप में उस गुमनाम लड़की से ज्यादा खूबसूरत युवती मैंने कहीं नहीं देखी। आखिर उसकी असीम सुंदरता का रहस्य क्या था?

और अब वे दोनों खाना खा रहे थे—पूरियां और भाजी और अचार। वह बड़े प्यार से निकालती जा रही थी और वह बड़े प्यार से खाता जा रहा था। और मैं सोच रहा था कि बहुत तड़के उसने ये पूरियां बड़े प्यार से तली होंगी और बड़े प्यार से यह भाजी पकाई होगी और फिर मिट्टी की अचारी में से अचार निकालकर नाश्तेदान में रखा होगा, इसलिए कि आज वे दोनों इकट्ठे सफर के लिए रवाना हो रहे थे। और शायद यह इन दोनों का पहला इकट्ठा सफर होगा। जिस प्यार-भरी नजर से वे एक-दूसरे को देख रहे थे, उससे मालूम होता था कि उनकी नई-नई शादी हुई है। यह शादी जरूर इन्होंने अपनी पसंद से की होगी। मां-बाप की कराई हुई शादियों में ऐसा प्यार कब होता है? तो फिर ये दोनों 'हनीमून' पर जा रहे होंगे। लड़के ने न जाने कितने महीनों की किफ़ायतशारी से रुपया बचाया होगा और अब वह अपनी प्रियतमा को, अपनी पत्नी को बंबई की सैर कराने ले जा रहा है। वहां वे किसी छोटे-से होटल में ठहरेंगे और पहली बार बिजली की रेल में बैठकर जुहू जाएंगे। और वहां वह साड़ी को दोनों हाथों से संभालकर टखनों-टखनों समुद्र के पानी में खड़ी होकर सूरज को डूबते देखेगी और लहरें सरसराती हुई उसके पैरों को गुदगुदाएंगी और वह अपने तन-बदन में एक अजीब झुरझुरी महसूस करेगी, जैसे प्यार के पहले चुंबन के समय महसूस होती है। और इतने में वह एक

नारियल हाथ में लिए, हंसता हुआ आएगा और वे दोनों एक ही नारियल को बारी-बारी से मुंह लगाकर उसका मीठा पानी पिएंगे और उस नारियल के पानी की मिठास में उन्हें एक-दूसरे के होंठों की मिठास का मजा भी आएगा। और फिर वह नारियल को गेंद की तरह दूर समुद्र में फेंक देगा, मगर लहरें नारियल को फिर उनके क़दमों में ला डालेंगी। और फिर वह अपनी पूरी ताक़त लगाकर नारियल को फेंकेगी और इस बार नारियल क़रीब ही समुद्र में गिर पड़ेगा। और फिर वे दोनों बिना कारण हंस पड़ेंगे और हंसते रहेंगे, हंसते रहेंगे, यहां तक कि किनारे पर घूमनेवाले सब मुड़कर उन दोनों की तरफ़ मुस्करा-मुस्कराकर देखने लगेंगे। और कोई कहेगा, "देखो-देखो, दुनिया की सबसे ख़ूबसूरत औरत!" और कोई कहेगा, "मगर उसके साथ जो है, उसको भी तो देखो—दुनिया का सबसे भाग्यवान आदमी!"

मगर अभी तक वे जुहू के किनारे पर नहीं पहुंचे थे। रेल के एक थर्ड क्लास के खचाखच भरे हुए डिब्बे में बैठे खाना खा रहे थे। और अब मैंने देखा कि दुनिया का सबसे भाग्यशाली मर्द निवाला बनाकर अपनी बीवी को खिला रहा है, और वह इस तरह शरमाकर प्यार-भरी नज़रों से अपने पति की तरफ़ देख रही है कि उसका चेहरा एक अजीब और मनमोहक सुर्ख़ी से तमतमा उठा है और उसकी आंखों में प्यार की धीमी मीठी आग चमक उठी है। और अब अचानक मैं समझ जाता हूं कि वह दुनिया की सबसे ख़ूबसूरत औरत क्यों है। उसकी सुंदरता का रहस्य है प्रेम। उस मुहब्बत का ही ख़ुमार उसकी आंखों में है। उस मुहब्बत की आंच उसके गालों पर है। उस मुहब्बत के ख़मीर ने उसकी जवानी में वह उभार पैदा किया है, जो उसके अंग-अंग में उभर रहा है।

मेरे क़रीब खड़ा एंग्लो-इंडियन लड़का कह रहा है, "लुक, मैन—यह फ़ोटो देखो। मिस यू० एस० ए०, जो ब्यूटी कम्पटीशन में फर्स्ट आई—मोस्ट ब्यूटिफुल गर्ल इन दि होल ब्लडी वर्ल्ड, मैन। आई वुड गिव माई राइट हैंड जस्ट टु हैव वन लुक ऐट हर।"

और मेरा जी चाहता है कि मैं चिल्लाकर इनसे कहूं, "यू फ़ूल्ज़, दुनिया की सबसे खूबसूरत औरत तो खुद यहीं, इसी खचाखच भरे रेल के डिब्बे में, तुमसे कुछ ही गज के फ़ासले पर बैठी है और तुम सारी दुनिया में उसकी तलाश कर रहे हो!"

मगर इसी वक़्त रेल की रफ़्तार कम होनी शुरू हुई। पटरियां बदलने की खड़खड़ाहट हुई और गाड़ी झांसी के स्टेशन पर रुक गई। मैंने देखा कि वह जो दुनिया का सबसे सौभाग्यशाली नौजवान है, प्लेटफ़ार्म पर उतर रहा है। और उससे बात करने के लिए मैं भी उतर पड़ा।

वह खड़ा इधर-उधर नज़रें दौड़ा रहा था—शायद पानीवाले की तलाश में। मैंने उसके करीब जाकर कहा, "कहिए, हनीमून पर जा रहे हैं आप?"

प्लेटफ़ार्म पर इतनी भीड़ थी और खोनचेवाले, गुड़िया बेचनेवाले और कुलियों की इतनी चीख़-पुकार थी कि कान पड़ी आवाज़ नहीं सुनाई देती थी। उसने मेरी तरफ मुड़कर पूछा, "जी, आपने मुझसे कुछ कहा?"

अब मैंने चिल्लाकर कहा, "कहिए, हनीमून पर जा रहे हैं आप लोग?"

"जी," उसने कौतूहलवश जवाब दिया, "आप किसकी बात कर रहे हैं? हमारी शादी को तो छः बरस होने को आए।"

और फिर वह मेरे आश्चर्य को देखकर मुस्करा पड़ा। "हम तो चार बरस की बच्ची को उसकी दादी के पास छोड़कर आए हैं।"

और फिर उसने इधर-उधर देखकर कहा, "माफ कीजिएगा, मैं ज़रा दही-बड़ेवाले को देख लूं। उनको दही-बड़े बहुत पसंद हैं।"

यह कहकर, वह भीड़ में ग़ायब हो गया।

गार्ड ने सीटी दी, झंडी हिलाई। मुसाफ़िर अपने-अपने डिब्बों की तरफ़ दौड़े। मैं भी अपनी जगह आकर बैठ गया। सामनेवाली सीट की तरफ़ देखा, तो दुनिया की सबसे ख़ूबसूरत औरत को परेशान नज़रों से प्लेटफ़ार्म की तरफ देखते पाया। मगर उस परेशानी में भी एक सौंदर्य था। यह मुहब्बत की परेशानी थी न!

गाड़ी हिलने लगी। और वह यंत्रवत उठ खड़ी हुई, जैसे अभी उतर पड़ेगी। लेकिन फिर वह रुक गई और चेहरे की हसीन परेशानी एक हसीन मुस्कराहट में बदल गई। और तब मैंने देखा कि चलती गाड़ी में वह चढ़ आया है, और उसके हाथ में दही-बड़ों का दोना है और उसकी आंखों में प्रेम भी है और विजयोल्लास का गर्व भी। जैसे वह कह रहा हो, "देखो, तुम्हारे लिए दही-बड़े ले आया न! दुनिया की कौनसी चीज़ है, जो मैं तुम्हारे लिए नहीं ला सकता? एक बार तुम कहो तो।"

हर साल जब कहीं सौंदर्य प्रतियोगता होती है, तो अखबारों में बहुत लंबे-लंबे लेख छपते हैं। मिस अमरीका कहती है कि "मैं अपने हुस्न को संतरों का रस पीकर क़ायम रखती हूं।" मिस बरतानिया कहती है कि "मैं रोज़ सवेरे उठकर पौरिज (दलिया) खाती हूं।" मिस फ्रांस अंगूरों और अंगूरी शराब को पसंद करती है। मिस जर्मनी अपने शरीर को दुबला और सुडौल रखने के लिए बिना छने आटे की डबल रोटी खाती है और बिना क्रीम का दूध पीती है। लेकिन अगर मुझसे पूछा जाए कि दुनिया की सबसे ख़ूबसूरत औरत क्या खाती है, तो मैं कहूंगा कि वह सबसे ज़्यादा दही-बड़ों को पसंद करती है—विशेपकर जब कि उसका पति प्लेटफ़ार्म पर भाग-दौड़ करके चलती रेल में उन दही-बड़ों का दोना लेकर आया हो और उसे स्वयं अपने

हाथ से छोटी-बड़ी गिनाने पर जिद कर रहा हो।

यों रेल चलती रही और स्टेशन गुजरते रहे। शाम से रात हो गई। और रात का खाना खाकर वह अपने पति के कंधे पर सिर रख-कर सो गई। कितना भरोसा था, उस नींद में! कितना प्यार था, उस कंधे में! कितना हुस्न था, उस सोते हुए चेहरे में, जो नींद में भी शायद कोई सुंदर सपना देखकर मुस्करा रहा था! देर तक सो मैं उन दोनों के बारे में सोचता ही रहा। शादी के छः बरस बाद भी कितनी जवान, कितनी ताज़ी है मुहब्बत उन दोनों की! मैंने फैसला कर लिया कि बंबई पहुंचकर मैं उन दोनों से जरूर मिलूंगा। उनसे मेल-मुलाकात बढ़ाकर मालूम करूंगा कि उनकी इस हसीन मुहब्बत का राज़ आखिर क्या है। यही सोचता हुआ मैं भी खिड़की की सलाखों पर सिर रखकर सो गया, हालांकि मेरे बायें कान को लालाजी के खर्राटे गुदगुदा रहे थे और दायें कान में रेल के पहियों की घड़घड़ाहट गूंज रही थी और पीठ के पीछे एक एंग्लो-इंडियन नौजवान एक अंग्रेजी गीत गुनगुना रहा था

डार्लिंग, डार्लिंग क्लीमेंटाइन,
आई एम ड्रीमिंग ऑफ यू ...
(प्यारी, प्यारी क्लीमेंटाइन, मैं तेरे ही सपने देख रहा हूं।)

ख्वाब में मैंने देखा कि दुनिया भर की और हर जमाने की औरतें सौंदर्य प्रतियोगिता के लिए जमा हैं। मिस्र की क्लियोपेट्रा है, ईरान की शीरीं है, अरब की लैला है, हिंदुस्तान की पद्मिनी है, फ्रांस की जोज़ेफाइन है, इंगलिस्तान की लेडी गोडेविया है, दांते की प्रियतमा इटली की बेट्रिस है—काली, गोरी, गेहुंए रंग की, भूरे बालोंवालियां, काले बालोंवालियां, शहज़ादियां, तवायफें, शायरों और [illegible] असली और काल्पनिक प्रेमिकाएं। और सबके

और प्रशंसक चिल्ला रहे हैं :

'क्लियोपेट्रा को वोट दीजिए !'

'आपके वोट की हक़दार शीरीं और सिर्फ़ शीरीं है !'

'पद्मिनी-जैसा सौंदर्य न कभी पैदा हुआ है, न होगा !'

'आइए, आइए, लेडी गोडेविया के नग्न सौंदर्य का निरीक्षण कीजिए !'

और ये सब आवाजें सुनकर मैं भी चिल्ला पड़ा, "यह सब बकवास है ! आइए, आइए, मेरे साथ आइए। दुनिया की सबसे ख़ूबसूरत औरत मैं दिखाता हूं। वह इस वक़्त एक थर्ड क्लास के खचाखच भरे डिब्बे में अपने पति के कंधे पर सिर रखे सो रही है।"

फिर मेरी आंख खुल गई। और मैंने देखा कि दिन निकल आया है और गाड़ी इगतपुरी के स्टेशन पर खड़ी है और दुनिया की सबसे ख़ूबसूरत नारी और दुनिया का सबसे भाग्यशाली पुरुष, दोनों वहां नहीं हैं।

"अरे, कहां गए, दोनों ?" मैंने सामने की खाली सीट की तरफ़ इशारा करते हुए लालाजी और मुंशीजी से पूछा।

"ऐ हज़रत, मेरी आंख भी अभी खुली है," मुंशीजी ने खंखारकर रात का खाया हुआ पान थूकते हुए कहा, "क्यों, जी, तुमने तो नहीं देखा ?"

और बुरक़े में लेटी हुई उनकी बीवी ने सिर हिलाकर इनकार कर दिया।

"कौन जाने रात को कौनसे स्टेशन पर उतर गए !" लालाजी ने एक बड़ी-सी डकार लेते हुए कहा और अपनी ललाइन को, जो बेचारी घूंघट निकाले-निकाले ऊंघ रही थीं, टहोका देकर बोले, "अरे, अब उठो भी। बंबई आनेवाला है।"

और फिर मुंशीजी ने मुझे संबोधित करके कहा, "आपको उन लोगों से कुछ काम था क्या ? देख लीजिए, इसी स्टेशन पर न उतरे हों कहीं।"

मैं लपककर उठा और गाड़ी से नीचे उतर आया।

और मैंने देखा, प्लेटफार्म पर सामने ही वह बैठी है—दुनिया की सबसे सुंदर नारी।

नहीं, यह वह नहीं है। उसकी रंगत तो पक्के गेहूं की तरह सुनहरी थी और यह तो ऐसी काली है, जैसे काला तवा।

मगर है यह भी दुनिया की सबसे खूबसूरत औरत। इसकी मुस्कराहट में भी वही मनमोहक छटा है, इसके अधखुले होंठ भी उसी तरह भरपूर मुहब्बत से रंगे मालूम होते हैं। इसकी आंखों में भी चमक है। इसकी गोद में एक बच्चा है, जिसे यह अपनी खूबसूरत चिकनी काली छाती से दूध पिला रही है। और इसकी नज़रें मुस्करा-मुस्कराकर एक लबे-लबे बालोंवाले काले रंग के नौजवान को देख रही हैं, जो इसके पास बैठा बीड़ी पी रहा है। उनके चारों तरफ उन-जैसे और कितने ही रेल की सड़क बनानेवाले मजदूर, उनकी बीवियां और बच्चे बैठे हैं, और उनका घरेलू सामान बिखरा पड़ा है—टीन के कनस्तर और बोरियां और घड़े। और उनके काम करने के औजार भी पड़े हैं—कुदालें और फावड़े और पत्थर ढोने की टोकरियां। और उन सबके बीच में ये दोनों बैठे हैं—दुनिया की सबसे खूबसूरत औरत और दुनिया का सबसे खुशकिस्मत नौजवान।

एक-दूसरे की आंखों में आंखें डालकर वे देख रहे हैं। मुस्करा रहे हैं। आप-ही-आप हंस रहे हैं। उनके दांत सुबह की सुनहरी धूप में चमक रहे हैं। और उनकी आंखें नाच रही हैं और उनके चारों ओर मुहब्बत की किरणों का एक घेरा है, जो सिर्फ मेरी निगाहें देख सकती हैं। और उनके सूरज से तपे हुए, मेहनत से गठे हुए, प्यार से तमतमाते हुए सुडौल जवान जिस्मों में वह हुस्न कौंध रहा है, जो किसी ड्राइंग-रूम में, किसी फिल्म स्टूडियो में, किसी होटल और रेस्तरां में नज़र नहीं

आता।

"कहां से आए हो, तुम लोग ?" मैंने पूछा।

एक अजनबी की आवाज़ सुनकर वह शरमा गई। मगर नौजवान बीड़ी फेंकते हुए बोला, "आंध्रा से।"

"कितने दिन हुए तुम्हारे ब्याह को?"

"इधर जंगल में सड़क बनाता है, बाबू। दिन भर पत्थर कूटता है। लगन करने की फ़ुरसत किधर है ? जब घर जाएगा, तब पंडित को बुलाकर सादी बनाएगा। क्यों?"

और यह कहकर, बिना किसी झिझक के उसने उसकी तरफ़ देखा, जो उसकी बीवी भी थी, और नहीं भी थी।

इंजन ने सीटी दी। और मैं अपने डिब्बे की तरफ़ भागा। चलती गाड़ी में से मैंने देखा कि वह काला तगड़ा नौजवान अपने बच्चे को हवा में उछाल रहा है और बच्चा हंस रहा है और बच्चे की मां उन दोनों को प्यार और गर्व भरी निगाहों से देख रही है।

फिर गाड़ी की पटरी मुड़ गई। और मेरी निगाहों से वे सब ओझल हो गए। और अब बावजूद भीड़ के हमारा डिब्बा सुनसान था। सिर्फ़ लालाजी थे, और उनकी ललाइन थीं, और मुंशीजी और बुरक़े में लिपटी हुई उनकी बीवी और उनके बच्चे। और एक एंग्लो-इंडियन नौजवान बालों में कंघी करते हुए अपने साथी से कह रहा था, "आज शाम को स्टैला को पिक्चर ले जाऊंगा। स्टैला को जानते हो न ? ओ ब्वाय, मोस्ट ब्यूटिफ़ुल गर्ल इन दी वर्ल्ड !"

ताना-बाना

प्रातःकाल के समय दरवाजे पर किसीने थपकी दी। दरवाजा खोला, तो देखा तीन नवयुवक खड़े हैं। एक दुबला और लंबा, सफेद कमीज और पतलून पहने हुए, जो इतनी दूध-सी सफेद थी कि लगता था कि सीधा लाण्ड्री में से कपड़े बदलकर आ रहा है। दूसरा मंझले कद का, सांवला रंग, बदन पर खद्दर का कुरता-पायजामा। तीसरा नवयुवक आयु में सबसे छोटा था। उसका पहनावा सबसे भड़कीला था, पांव में सफेद सैंडिल, सिल्क की पतलून और नाइलोन की बुशर्ट, जिस पर रंग-बिरंगे तोते, भूरले और उल्लू छपे हुए थे। उसके बालों की कटाई दिलीपकुमार के स्टाइल की थी। मुंह पर पाउडर भी लगाया जान पड़ता था।

मैंने कुरसियां बढ़ाते हुए कहा, "कहिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं ?"

"जी, हम आपको निमन्त्रण देने आए हैं," और फिर उन्होंने मुझे बताया कि मोमिनपुरा के करघा चलानेवालों और मिल मजदूरों ने मिलकर एक पुस्तकालय स्थापित किया है, जिसके लिए उन्होंने सत्तर सौ पुस्तकें इकट्ठी की हैं और अगले महीने इस पुस्तकालय का उद्घाटन है—राजेन्द्रसिंह बेदी के हाथों; और बाद में मुशायरा भी होगा। मैंने खुशी से निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

फिर मैंने सफ़ेद कमीज़-पतलून से पूछा, "आप क्या करते हैं ?"

जवाब मिला, "मैं एक मिल में वीविंग मास्टर हूं।"

"और आप ?" मैंने खद्दर के कुरता-पायजामे से सवाल किया।

"जी, मैं मोमिनपुरा में ही करघा चलानेवालों की कोओपरेटिव सेक्रेटरी हूं।"

अब मैं अमरीकन बुश्शर्ट को संबोधित करके बोला, "और आप क्या करते हैं ?"

"जी, मैं कुछ नहीं करता—मैं तो थोड़े दिन हुए वतन से यहां आया हूं—काम तलाश कर रहा हूं।" और जिस तरह उसने काम की चर्चा की, उससे मुझे पता चल गया कि उसको जिस काम की तलाश है, वह किसी मिल या करघों की कोओपरेटिव में नहीं मिल सकता।

जब वे लोग मुझसे विदा होकर बाहर जाने लगे, तो मुझे लगा कि अमरीकन बुश्शर्टवाला नवयुवक अपने साथियों से पीछे रहना चाहता है। वे दोनों दरवाज़े के बाहर हुए ही थे कि वह मेरी तरफ मुड़कर बोला, "मुझे आपसे एकांत में कुछ बात करनी है। मैं इन लोगों के साथ तो इसलिए चला आया था कि आपके घर का पता नहीं मालूम था मुझे।"

"क्यों भई, क्या बात है ?" मैंने पूछा।

"जी, वह...बात यह है...सच बात यह है...मुझे फ़िल्म में काम करने का शौक़ है।"

यह संवाद प्रायः मैं एक नवयुवक के मुंह से हर रोज़ सुनता हूं—सो मैंने कहा, "बड़ी खुशी की बात है।"

"तो फिर आपकी पिक्चर में काम मिल जाएगा, न ?"

मैंने कहा, "नहीं।"

"तो फिर और कहीं सिफ़ारिश कर दीजिए।"

"जैसे कहां ?"

"राज कपूर के नाम चिट्ठी दे दीजिए।"

"राज कपूर तुम्हें नहीं लेगा।" मैंने विशेष रूप से गंभीर मुखमुद्रा

बनाकर उत्तर दिया।

"क्यों ?"

"इसीलिए कि तुम्हें देखकर उसे चिंता होगी कि कहीं तुम उसकी जगह न ले लो।"

"आप तो मजाक कर रहे हैं।"

मैंने विषय बदलते हुए कहा, "कहां से आए हो ?"

"यू० पी० में एक छोटा-सा क़सबा है।"

"शिक्षा कहां तक पाई है तुमने ?"

"मैट्रिक तक।"

"पास या फेल ?"

थोड़ी देर के बाद उत्तर मिला, "फेल !" और ऐसा प्रतीत हुआ कि उसकी बुश्शर्ट पर बने हुए उल्लू आंखें चमका रहे हैं।

"तो ऐसा करो, घर वापस जाओ और बी० ए० तक पढ़कर आओ—तब मैं तुम्हारे लिए कोशिश कर सकता हूं।"

"इसका मतलब यह है, आप मेरी मदद नहीं करना चाहते।"

"तो यही समझो। घर से भागे हुए मैट्रिक फेल नौजवानों को हीरो बनवाने का मैंने ठेका नहीं लिया।" मैंने किसी कदर सख्ती से कहा, हालांकि यह संवाद बंबई में प्रायः प्रतिदिन बोलता हूं।

यकायक वह उठकर खड़ा हो गया। उसके दिलीपकुमार-जैसे बालों की लट उसके माथे पर आ गिरी। ऐसा लगा, जैसे उसकी चीखते हुए रंगों की बुश्शर्ट के तमाम तोते, मुरगे और उल्लू एक साथ चीखने लगे हों।

"ठीक है, साहब," वह नाटकीय ढंग में बोला, जैसे दूसरी श्रेणी की फ़िल्म का तीसरी श्रेणी का साइड हीरो संवाद बोलता हो, "इस दुनिया में कोई किसीका नहीं है—मगर कोई चिंता नहीं, हमारा भी खुदा है,

इस संवाद का भी मैं अभ्यस्त हूं—सो मैंने कहा, "मुझे नहीं मालूम था कि अल्लाह मियां ने भी कोई फ़िल्म कंपनी खोल रखी है !"

"अच्छा साहब, तो मैं जाता हूं—अब मैं आपसे तब ही मिलूंगा, जब मैं हीरो बन जाऊंगा।"

और वह अमरीकन बुश्शर्ट मुझसे क्रोधित होकर चली गई। नीले रंग के तोते और हरे रंग के मुर्ग़े और गुलाबी रंग के उल्लू भी चले गए और मैं बहुत देर तक इस नवयुवक के बारे में सोचता रहा, तो मुझे लगा कि इसमें कोई विशेष बात थी, यद्यपि देर तक सोचने के बाद भी मैं यह निर्णय नहीं कर सका कि वह विशेष बात क्या थी।

अगले महीने मैं मोमिनपुरा में पुस्तकालय के उद्‌घाटन पर गया। वहां से लौट रहा था कि एक गली से गुज़रना पड़ा, जो मुश्किल से छः-सात फुट चौड़ी थी। उस पर बहुत-से लोग सो रहे थे। अच्छा-खासा खुला बेडरूम बना हुआ था।

मैं फूंक-फूंककर कदम धरता हुआ इस गली में से गुज़र रहा था कि मेरे पांव ने कोई कपड़ा उलझा हुआ महसूस किया। ठिठककर मैं रुक गया। कपड़े को उठाकर म्युनिसिपैलिटी की पीली बत्ती की रोशनी में देखा, तो वही जानी-पहचानी बुश्शर्ट थी, मगर अब उसके चीखते हुए रंग-बिरंगे तोते, मुर्ग़े और उल्लू दस दिन के मैल और पसीने के धब्बों से फीके पड़ गए थे। मैंने बराबर में बिछे हुए बिस्तर की तरफ़ देखा—एक फटी हुई मैली चटाई पर, हाथ का तकिया किए वही नवयुवक सो रहा था। मैंने देखा कि मैले बनियान में से उसके दुबले बदन की हड्डियां और पसलियां अलग-अलग दिखाई दे रही हैं। पतलून के कीचड़ से भरे हुए पांयचे टखनों से ऊपर तक उलटे हुए हैं और जूता—जो शायद चोरी के डर से सोते समय भी उसके पैरों में है, उसके दोनों तलों में छेद हो गए हैं। मुझे ऐसा लगा कि इसकी फटी हुई बनियान में से निकली हुई हड्डियां और पसलियां मुझसे कुछ कह रही हैं। मगर एक बार फिर मैं यह निर्णय न कर सका कि वे मुझसे क्या कह रही

हैं, मैंने चुपके से बुश्शर्ट उसके सिरहाने रख दी और वहां से चला आया।

इसके पंद्रह-बीस दिन बाद मुझे एक स्टूडियो में जाने का संयोग हुआ। मेरा एक डाइरेक्टर दोस्त उस दिन वहां एक 'मॉब सीन' की शूटिंग कर रहा था। फिल्मी शब्दकोश में मॉब सीन उस दृश्य को कहते हैं, जिसमें एक भीड़ की जरूरत होती है, जिसके लिए सैकड़ों एक्स्ट्रा भरती किए जाते हैं, पांच रुपए प्रति दिन पर, जिसमें से सवा रुपया एक्स्ट्रा-सप्लायर अपना कमीशन काट लेता है। इस समुदाय में मुझे एक जानी-पहचानी सूरत दिखाई दी, मगर अब वह उस बुश्शर्ट के स्थान पर स्टूडियो से दी हुई एक मैली धोती और पैबंद लगी हुई बंडी पहने था। मुझे देखते ही उसने शरम के मारे अपनी निगाहें फेर लीं। बाद में जब मैं डाइरेक्टर से बातें कर रहा था और सीन लेने की तैयारी हो रही थी, मैंने सोचा इसकी सिफारिश कर दूं कि इस सीन में इसे बोलने के लिए कोई संवाद दे दिया जाए, ताकि इसको पौने चार रुपए की जगह साढ़े सात रुपए मिल जाएं। लेकिन मुझे तो उसका नाम भी नहीं मालूम और मैं उसे अब भी अमरीकन बुश्शर्ट ही याद कर रहा था।

इस घटना को बीते कोई एक सप्ताह ही बीता होगा कि मुम्बार के दिन किसीने दरवाजे की घंटी बहुत धीरे-से बजाई—जैसे वह बटन दबाता हिचकिचा रहा हो। मैंने दरवाजा खोला, तो देखा वही नवयुवक खड़ा है, लेकिन हालत पहले से भी गई बीती—आंखें लाल अंगारों के समान, जैसे रात भर सोया न हो, गाल पिचके हुए, जैसे कई वक्त से खाना न मिला हो, कपड़े मैले चीकट, कई दिनों की दाढ़ी बढ़ी हुई। मैंने अंदर बुलाकर कहा, "बैठो।"

वह बोला, "अब मेरा फिल्मी बुखार उतर गया है।"

"बहुत अच्छी बात है—अगर तुम घर वापस जाना चाहते हो, तो मैं तुम्हें किराया दे सकता हूं।"

"जी, धन्यवाद। मगर इस हालत में मैं घर जाना नहीं चाहता, न मैं किसीसे किराए की भीख मांगना चाहता हूं—कोई और काम करना चाहता हूं।"

उसकी आवाज़ ऐसी बुझी हुई, बल्कि मुर्दा थी कि मैंने सोचा, न जाने ग़रीब कब से भूखा है—सो मैंने कहा, "तुम बैठो, मैं तुम्हारे लिए चाय लाता हूं।"

मेरे पीछे-पीछे उसकी थकी हुई आवाज़ आई, जैसे कोई अपाहिज बुढ़िया घिसट-घिसटकर चल रही हो, "जी, नहीं···आप···तकलीफ़···न···" और फिर धड़ाम से आवाज़ हुई और जब मैं भागकर बरामदे में पहुंचा, तो देखा वह बेहोश पड़ा है।

उस शाम को मैंने पहली बार उससे धैर्यपूर्वक बातें कीं।

"सबसे पहले तो तुम यह बताओ, तुम्हारा नाम क्या है?"

"जी, मेरा नाम तो मोहम्मद ताहिर है," और फिर एक अजीब-सी मुस्कराहट उसके चेहरे पर फैल गई, "मेरे घरवाले सब मुझे ताना कहते हैं।"

"तो गोया तुम अपने समय के तानाशाह हो?"

"जी, नहीं, यह वह ताना नहीं—यह ताना-बाना का ताना है।"

"क्या करते हैं, तुम्हारे घरवाले?"

"ताने-बाने का धंधा—मतलब यह कि कपड़ा बुनते हैं। मैं भी यहां आने से पहले स्कूल के समय को छोड़कर यही करता था। पर मेरे अब्बा ऐसी महीन साड़ी बुनते हैं कि क्या आपकी मशीन की बुनी मलमल तनजेब होती होगी।"

"किससे सीखा यह काम तुम्हारे अब्बा ने?"

"अपने अब्बा से। सात पीढ़ियों से हमारे घर के करघों पर महीन
[illegible]ड़ियों का ताना-बाना होता रहा है। हमारे दादा के दादा के दादा,
[illegible]हम्मद बख़्श बुनकर थे, जो शाहजहां बादशाह की बेटी शाहज़ादी
[illegible]हांआरा के लिए तनजेब, कमख़ाब, गुलबदन और गुलबमन बुना करते
थे।" मैंने पहली बार उसकी आंखों में प्रसन्नता और उल्लास की
चमक देखी।

"तो क्या तुम्हारे परिवारवाले पहले देहली में रहते थे।"

"नहीं, असल में हमारा क़स्बा शाहज़ादी जहांआरा का बसाया
हुआ है। उनकी वजह से ही सारे देश के कुशल और चतुर कारीगर
और दस्तकार वहां आकर बस गए थे। इनमें ही हमारे परदादा
भी थे।"

"क्या नाम है तुम्हारे क़स्बे का ?"

"एक युग की बात है जब इसे जहांआरा के नाम पर जहांआबा[illegible]
कहते थे, अब इसे मऊ कहते हैं, मऊनाथ भंजन, जो उत्तरप्रदेश [illegible]
ज़िला आज़मगढ़ में है।"

"मऊनाथ भंजन !" मैंने कठिनाई से यह नाम दुहराया, "ब[illegible]
अजीब नाम है।" और इसके बाद मैं उस क़स्बे को भुलाकर उस[illegible]
दूसरी बात करता रहा।

अंत में मैंने उससे प्रश्न किया, "तुम्हारे अब्बा इतने अच्छे [illegible]
मशहूर कारीगर हैं, तो तुम वहां से भागे क्यों ? और अब वहां वा[illegible]
क्यों नहीं जाते ?"

अब उसने बताया कि हाथ करघे का धंधा मशीनों के कपड़े
मुक़ाबले की वजह से मंदा है। "कभी-कभी तो महीने भर में अब्बा
बस दो-चार साड़ियों का आर्डर भी मुश्किल से मिलता है।" यह कह[illegible]
वह रुक गया, जैसे सोच रहा हो कि कहूं या न कहूं—फिर बोला, "[illegible]
बहुत बूढ़े हो गए हैं, सठिया गए हैं, हर वक़्त ताना-बाना के चक्क[illegible]
पड़े रहते हैं।"

"ताना-बाना का चक्कर ! वह क्या है ?"

"उन्होंने अपनी सारी ज़िंदगी करघा चलाते ही गुजारी है न, सो वह कहते हैं, यह दुनिया का धंधा कुछ नहीं है। बस, ताना और बाना है। उनका बस चले, तो सारी दुनिया के मुल्कों की यह राजनीति, यह साइंस, यह प्रगति, हर चीज़ को ताने-बाने का खेल साबित कर दें।"

मैंने कहा, "तुम्हारे अब्बा कुछ ग़लत नहीं कहते, ताहिर मियां। मैं तो समझता हूं, उन्होंने अपने इस ताने-बाने में ज़िंदगी के असली रहस्य को पा लिया है। वैज्ञानिक इसे निगटिव-पॉज़िटिव का नियम कहते हैं और मार्क्सी फ़िलासफ़ी में इसे थीसिस और एंटीथीसिस कहते हैं।"

"वह तो ठीक होगा, साहब, पर इस ताने-बाने के चक्कर में वह मुझे भी तो अभी से फंसाना चाहते हैं—तभी तो मैं यहां भाग आया!"

"यानी वह चाहते हैं तुम उनके साथ मिलकर काम करो। इसमें क्या बुराई है?"

"नहीं जनाब, काम की बात ही नहीं है—वह चाहते हैं कि मैं अभी से शादी कर लूं। वह कहते हैं कुंआरा इन्सान बस ताना होता है। जब तक उसके साथ बाने को न मिलाया जाए, ज़िंदगी की बुनावट नहीं हो सकती।"

मैंने पूछा, "तो फिर तुम्हारे लिए उन्होंने कोई बाना चुनी?"

"जी हां, उसीसे भागकर तो मैं यहां आया हूं।"

"कौन है वह लड़की?"

"हमारे पड़ोसी हैं—चाचा रहमत। उनकी बेटी है—बानू। पर मुझे छेड़ने के लिए उसे सब बानू की जगह बाना कहते हैं।"

मैं बरबस हंस पड़ा, "ताना-बाना, बाना-ताना! भई, विचार तो बड़ा सुंदर है—मगर तुम इस शादी के क्यों खिलाफ़ हो, लड़की बहुत भयानक है, क्या?"

"नहीं, नहीं।" उसने जल्दी से कहा, "लड़की तो ठीक है, सूरत-शक्ल की बुरी नहीं। थोड़ी पढ़ी-लिखी भी है—पर साहब, आप ख़ुद ही विचार कीजिए—घर में खाने को पूरा नहीं पड़ता—ऐसी हालत

मैं उस बेचारी को भी मुसीबत में फंसाता कहां की भलमनसाहत है ? इसीलिए तो बंबई आया था कि शायद कोई काम मिल जाए ।"

जिस तरह से उसने 'उस बेचारी' कहा और जो चमक उसकी आंखों में बानू का नाम लेने से पैदा होगई थी, उससे मेरा संदेह विश्वास में बदल गया । मैंने कहा, "सच-सच बताओ, तुम उससे प्यार करते हो, न ?"

उसने सिर हिलाकर स्वीकार किया, लेकिन विषय बदलने के लिए जल्दी से बोला, "हां, तो फिर आप खत लिखते हैं न, करघेवालों की उस कोआपरेटिव के नाम ?"

उस दिन के बाद काफी समय तक मेरी उससे कोई मुलाकात न हुई । मगर लोगों के ज़रिए मुझे उसकी सूचना मिल जाया करती थी—करघों की कोआपरेटिव में उसने बड़ा जी लगाकर काम किया । उसके सेक्रेटरी मुझे एक बार मिले, तो उन्होंने ताहिर के काम की बड़ी तारीफ़ की और मुझे धन्यवाद दिया कि उनको इतना अच्छा और काम का आदमी दिया । फिर सुना कि अवकाश के समय वह बंबई के किसी आर्टिस्ट से ड्राइंग का काम सीख रहा है और उसके कई डिज़ाइन मोमिनपुरा की कोआपरेटिव ने चालू किए—और वह मार्केट में बहुत कामयाब रहे । यह भी सुना कि उसने थोड़ा-बहुत पैसा भी जमा कर लिया है । लेकिन वह घर वापस नहीं गया, इसलिए मुझे न जाने क्यों एक बेचैनी और अविश्वास का भाव उत्पन्न होने लगा ।

फिर एक दिन वह मुझे मिलने आया, दूध-जैसे सफेद कपड़े पहने एक टैक्सी में बैठकर । मैंने देखा कि टैक्सी के पीछे एक संदूक और बिस्तर बंधा हुआ है ।

कहने लगा, "मैं महू वापस जा रहा हूं—आपको खुदा हाफ़िज़ कहने आया हूं और जो कुछ आपने मेरे लिए किया है, उसका शुक्रिया अदा करने ।"

मैंने कहा, "क्यों भई, क्या हुआ, जो एक दम जाने का तय कर लिया?"

वह बोला, "जी, बात यह है कि चाचा रहमत अली का ख़त आया है···बानू के वालिद का।"

मैंने तनिक आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, "तो बानू के वालिद का ख़त आया है!"

"जी हां, उन्होंने किसीसे लिखवाकर भेजा है, कहते हैं, 'अगर तुम अब भी बानू से शादी करना चाहते हो, तो जल्द यहां पहुंचो, वरना हम उसकी मंगनी किसी और से कर देंगे।' तो आप कभी आइए न, महूनाथ भंजन।"

"देखो, मौक़ा मिला, तो आऊंगा—अगर तुम्हारे क़सबे का यह जबड़ातोड़ नाम याद रहा तो!"

"अच्छा, तो बहुत-बहुत शुक्रिया और ख़ुदा हाफ़िज़।"

"ख़ुदा हाफ़िज़।"

उसकी टैक्सी चल पड़ी और मैं सड़क पर खड़ा उसे धूल के बादलों में विलीन होते देखता रहा। मुझे हलकी-सी चिंता हो रही थी कि कहीं मेरे टांग अड़ाने से इस कहानी का अंत तो ग़लत न हो जाएगा। बात यह है कि ताहिर को चाचा रहमत अली की तरफ़ से जो ख़त मिला था, वह मेरा ही लिखा हुआ था।

कई महीने बाद सैयद सज्जाद ज़हीर साहब का ख़त आया कि उत्तरप्रदेश में कई जगह मुशायरों और कहानियों की रात का प्रोग्राम बना है।

मैंने लिखा कि मुझे माफ़ करें। काम बहुत है। बंबई छोड़ना नामुमकिन है।

फिर वह ख़ुद आए। मैंने उनसे प्रार्थना की कि मुझे क्षमा करें। कुछ मजबूरियां ऐसी ही हैं।

उन्होंने कहा, "भई, कम-से-कम मऊ तो चलो—वहां किसान

कानफ्रेंस भी है।"

"महनाथ भंजन !" और मेरे कानों में ताहिर की आवाज आई, 'तो आप अभी आइए न, महनाथ भंजन।'

और सो मैं वहां गया—अपनी कहानी के अंत की खोज में। ताहिर मुझे स्टेशन पर मिला और सीधा अपने घर ले गया। मैंने देखा, उसके करघे पर एक निहायत सुंदर डिज़ाइन की साड़ी बुनी जा रही है—सुनहरी ताना था और खादी का बाना—और जैसे-जैसे बुनावट होती जा रही है, फूल खिलते जा रहे हैं।

मैं उसके पिता से मिला। मैंने उनसे कहा, "आप से मिलकर मुझे बड़ी खुशी हुई। मैंने आपके ताने-बाने के फ़िलसफ़े का ज़िक्र सुना है और मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूं।

और सफेद दाढ़ीवाले मियां ने कहा, "तुम यहां आए हो—बंबई से महनाथ भंजन। यह भी क़िस्मत के करघे का खेल है। यहां किसानों की कानफ्रेंस हो रही है, न—सो ताना मेहनत का है, और बाना···"

"मुहब्बत का।" मैंने उनका वाक्य पूरा किया।

और फिर ताहिर ने आवाज दी, "बानू, आओ, न ! अब्बा ने कह दिया है—इनसे परदा करने की कोई ज़रूरत नहीं है।"

चिक हटी और अंदर के कमरे से बानू ने प्रवेश किया। लज्जा से सिर ढके हुए, आंखें झुकाए हुए—उसने झुककर सलाम किया। मैं उन दोनों से बहुत कुछ कहना चाहता था—प्रेम के बारे में, उनके ऐतिहासिक नगर के बारे में, इस क्षेत्र के बारे में, जहां मुद्दों से श्रम में लगे हुए व्यक्तियों के कला-कौशल ने कपड़े की ज़मीन में कला के पुष्प खिला दिये हैं, इस कस्बे के बारे में, जिसके लोग स्वतंत्रता संग्राम में सदा आगे-आगे रहे हैं। मैं कहना चाहता था कि परिश्रम और [illegible] ताने-बाने में इस जीवन के सौंदर्य और स्वतंत्रता [illegible]

होती है। यह करघा हमेशा [illegible]

मगर मैं [illegible]

वापसी का टिकट

इन्सान ने इन्सान को कष्ट पहुंचाने के लिए जो विभिन्न यंत्रों और साधनों का आविष्कार किया है, उनमें सबसे खतरनाक है—टेलीफ़ोन !

सांप के काटे का तो मंतर हो सकता है, मगर टेलीफ़ोन के मारे को तो पानी भी नहीं मिलता।

मुझे तो रात-भर इस कमबख्त के डर से नींद नहीं आती कि सुबह-सवेरे न जाने किसकी मनहूस आवाज सुनाई देगी। दो-ढाई बजे आंख लग भी गई, तो सपने में क्या देखता हूं कि सारी दुनिया की घंटियां, घंटे और घड़ियाल एक साथ बजना शुरू हो गए हैं—मंदिरों के बड़े-बड़े पीतल के घंटे, पुलिस के थाने का घड़ियाल, दरवाज़ों की बिजलीवाली घंटियां, साइकिलों की ट्रिक-ट्रिक, फ़ायर इंजनों की क्लेंग-क्लेंग और जब आंख खुलती है तो मालूम होता है कि टेलीफ़ोन की घंटी बज रही है। इस असमय रात को किसका फ़ोन आया है ? जरूर ट्रंक-काल होगा ! पल-भर में न जाने कितने वहम दिल धड़काते हैं। एक दोस्त मद्रास में बीमार है, एक रिश्तेदार लंदन और बंबई के बीच हवाई जहाज़ में है। भतीजे का मैट्रिक का नतीजा निकलनेवाला है।···

मैं फ़ोन उठाकर कहता हूं, "हैलो !"

दूसरी तरफ़ से घबराई हुई आवाज आती है, "चुन्नीभाई, केम छो ?"

मैं कहता हूं कि यहां न कोई चुन्नीभाई है न केमछो ।

मगर वह कहता है, "चुन्नीभाई, टाटा डेफर्ड ऊपर जा रहा है ।"

मैं कहता हूं, "जाने दो ।"

वह गुजराती में गाली देकर कहता है, "कैसे जाने दें ? ब्रिटिश इलेक्ट्रिक के सौदे में पहले ही घाटा खा चुके हैं ।"

मैं समझाता हूं, "देखो, भाई, मैं चुन्नीभाई नहीं हूं ।"

"ओह !" उधर से आवाज आती है, जैसे टायर में से एकदम हवा निकल गई हो, "तमे चुन्नीभाई नथी छो ?"

मैं पूछता हूं, "आपको कौनसा नंबर चाहिए ?"

वह कहता है, "एट-सेविन-एट-सिक्स-सिक्स ।"

मैं कहता हूं, "यह तो एट-सिक्स-एट-सेविन-सेविन है ।"

वह कहता है डांटकर, "तो पहले ही क्यों नहीं बोलते रौंग नंबर ?"

मैं कहता हूं, "अच्छा भाई, मेरा ही दोष है । अब क्षमा करो ।" और फोन रख देता हूं और नींद को वापस बुलाने के लिए भेड़ें गिनना शुरू कर देता हूं ।

और फिर सुबह उठकर, तो टेलीफोन की घंटी बजने का क्रम ही शुरू हो जाता है ।

"आप मुझे नहीं जानते । मैं आपके पुराने वतन पानीपत के पास जो कसबा है रिवाड़ी, वहां से आया हूं—फ़िल्म कंपनी में हीरो बनने..."

"मुझे आपसे एपाइंटमेंट चाहिए, अपनी कहानियां सुनाना चाहता हूं..."

"अगले इतवार को हमारी सभा का वार्षिक उत्सव और कवि सम्मेलन है । आपको आना ही पड़ेगा । आपके नाम की हम घोषणा पहले ही कर चुके हैं..."

"पत्रिका प्रेस में रुकी पड़ी है, केवल आपके लेख का इंतज़ार है..."

"देखिए, आप मुझे नहीं जानते, लेकिन क्या आप मुझे कृपा करके

राज कपूर का एड्रेस दे सकते हैं ?…"

कल सवेरे की बात है कि यही क्रम चल रहा था कि एक बार फ़ोन की घंटी बजी। मैंने हिम्मत करके फ़ोन उठाया।

"हैलो !" मैंने कहा, हालांकि टेलीफ़ोन की डायरेक्टरी आदेश करती है कि हैलो मत कहो।

"हैलो !" दूसरी तरफ़ से बड़े ही यूरोपियन अंदाज़ की आवाज़ आई। मैं समझा कि कोई अमरीकन या अंग्रेज़ बोल रहा है।

फिर उसने अंग्रेज़ी में पूछा, "क्या मैं ख्वाजा अहमद अब्बास से बात कर सकता हूं ?"

मैंने अंग्रेज़ी में ही जवाब दिया, "मैं अब्बास ही बोल रहा हूं, कहिए, कौन साहब बोल रहे हैं ?"

एकाएक फ़ोन के दूसरे सिरे पर अंग्रेज़ी हिंदुस्तानी में बदल गई, मगर लहजा विलायती ही रहा, जैसे कोई इंगलिस्तान से पढ़कर दस बरस बाद हाल ही में लौटा हो, "क्यों, भाई, मेरी आवाज़ पहचान सकते हो ?"

मैंने संकोचवश झूठ बोला, "आवाज़ तो आपकी जानी-बूझी मालूम होती है, लेकिन क्षमा कीजिएगा…"

उसने मेरी बात काटकर कहा, बड़े संकोच-रहित ढंग से, मगर लहजा वही विलायती रहा—ऐसा लगता था, जैसे कोई अंग्रेज़ी फ़ौज का करनल हिंदुस्तानी बोल रहा हो, "छोड़ो, यार ! तुम मेरी आवाज़ पूरे पच्चीस बरस बाद सुन रहे हो। आख़िरी बार हम लखनऊ में मिले थे, उन्नीस सौ छत्तीस में।"

न जाने कैसे मेरे दिमाग़ में एक घंटी-सी बजी। मैंने कहा "बिरजेंद्रकुमार सिंह—बिरजू ?"

उधर से आवाज़ आई, 'राइट, बिरजू !"

'विरजू !" मैंने खुशी में चिल्लाकर कहा, "कहो, भई, इतने दिनों रहे, क्या करते रहे ? आजकल क्या करते हो ?"

टेलीफ़ोन पर भी मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे दूसरी तरफ़ जवाब पहले उसने एक लंबी ठंडी सांस ली हो। जब वह बोला, तो आवाज बिलकुल ही बदली हुई थी, जैसे एकदम किसी गहरी में डूब गई हो, "यह सब एक लंबी कहानी है। क्या मैं तुमसे मिलने आ सकता हूं ?"

मैंने कहा, "मैं तो शहर से बहुत दूर जुहू में रहता हूं। मगर हर दोपहर को मैं शहर आता ही हूं। ऐसा क्यों न करें, किसी रां में इकट्ठे लंच खाएं। अब यहां बंबई में भी तुम्हारे लखनऊ तरह एक 'मेफ़ेयर' रेस्तरां खुल गया है।"

"मेफ़ेयर !" उसने रेस्तरां का नाम ऐसे दोहराया, जैसे किसीने चानक उसके चुटकी ले ली हो, "*नहीं-नहीं, मैं तुमसे किसी रेस्तरां* नहीं मिलना चाहता। वहां बहुत-से लोग होते हैं। हम आराम से त नहीं कर सकेंगे।"

"अच्छा," मैंने कहा, "तो तुम यहां ही आ जाओ, मैं तुम्हारा तज़ार करूंगा, कितने बजे आओगे ?"

"*जितनी देर टैक्सी को चर्चगेट से जुहू पहुंचने में टाइम लगेगा।*"

"कोई चालीस-पचासीस मिनट"'मैं अपने बरामदे में खड़ा मिलूंगा।" फिर मुझे कुछ याद आया और मैंने कहा, "अरे भाई, लक्ष्मी भी साथ है, तो उसे भी लेते आना—भाभी के दर्शन..." एक वाक्य फिर मेरे दिमाग में गूंजा और मैंने कहा, "हम तुम्हारे रक़ीब नहीं हैं, यार।"

मगर उधर से कोई जवाब नहीं आया, टेलीफ़ोन का सिलसिला पहले ही कट चुका था।

अगले पैंतालीस मिनट तक पच्चीस बरस पुरानी तसवीरें मेरे दिमाग में उभरती रहीं।

बिरजू...

बिरजेंद्र...

बिरजेंद्रकुमार सिंह...

कुंवर बिरजेंद्रकुमार सिंह...

बिरजू...

हमारा यार बिरजू...

बिरजू, दि ब्यूटिफुल...

बिरजू, दि ब्रिलियंट...

बिरजू, जो खूबसूरत था, डीलडौलवाला था, बुद्धिमान था, टेनिस का चेंपियन था और यूनियन में सबसे अच्छा भाषण करता था...

बिरजू, जिसके पीछे दरजनों लड़कियां दीवानी थीं...

हाईकोर्ट के जज, जस्टिस सर रमेश सक्सेना की बेटी, आशा सक्सेना, जो जी० आई० टी० कॉलेज में पढ़ती थी...

डॉ० सतीश बनर्जी की लड़की करुणा, जिसकी खूबसूरत बंगाली आंखें जैमिनी राय की किसी तसवीर से चुराई हुई लगती थीं...

प्रोफ़ेसर हामिदअली की छोटी बहन सुरैया साजिदअली, जिसने करामत हुसैन गर्ल्स कॉलेज का परदेवाला वातावरण छोड़कर युनिवर्सिटी में उसी साल दाखिला लिया था और जो हर डिबेट और हर ड्रामे में यूनियन हॉल में सबसे आगे बैठती थी, ताकि बिरजू को दिल भरकर देख सके...

सरला माथुर, जो हिंदी में एम० ए० कर रही थी और कविता लिखती थी और जिसकी हर कविता में बिरजू का रूप ही झलकता था...

सिलविया टॉमसन, जो स्टेशन मास्टर की लड़की थी और क्लब के हर डांस में बिरजू को दावत देने खुद उसके होस्टल जाती थी, हालांकि वहां लड़कियों का आना-जाना मना था...

विरजू...

वाकई वह कितना ईर्ष्या-योग्य इन्सान था !

पहली बार जब उससे मेरी मुलाक़ात हुई, तो वह अलीगढ़ युनिवर्सिटी की ऑल इंडिया डिबेट में भाग लेने लखनऊ युनिवर्सिटी की तरफ से आया था।

पच्चीस बरस बाद भी मुझे उससे वह पहली मुलाक़ात भी अच्छी तरह याद थी। मैं अपनी युनिवर्सिटी यूनियन की तरफ से आनेवाले मेहमानों का स्वागत करने के लिए स्टेशन गया था। उस ट्रेन से लखनऊ, इलाहाबाद, बनारस और कानपुर के कॉलेजों के डिबेटर आए थे। कुल मिलाकर वे ग्यारह-बारह या चौदह थे। लेकिन उन सब में एक सबसे अनोखा था। न केवल इसलिए कि सबसे ज़्यादा डीलडौलवाला था और बंद गले और पूरी आस्तीन के स्वेटर में उसका कसरती बदन यूनानी की प्रतिमा की तरह गठा हुआ और सुडौल था, बल्कि इसलिए भी कि उसके चेहरे पर एक अजीब मासूम मुस्कराहट थी। और जब मैंने उससे हाथ मिलाया, तो उसके शेक-हैंड में बड़ी आत्मीयता और गरमी थी, जिससे मालूम होता था कि हम लोगों से मिलकर उसे वाक़ई बड़ी ख़ुशी हुई है। उस एक पल ही में मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे हम दोनों बड़े पुराने दोस्त हैं और बरसों से एक-दूसरे को जानते हैं।

फिर ऑल इंडिया डिबेट हुई। भाषण प्रतियोगिता का विषय था—'सामाजिक जागरण के बिना राजनीतिक आज़ादी काफ़ी नहीं है।'

मैं इस विषय के विरोध में बोला था। अपने भाषण में मैंने साम्राज्य के विरुद्ध और निजी स्वतन्त्रता के आंदोलन के समर्थन में बहुत भावपूर्ण भाषण दिया और उन लोगों की खूब लताड़ा, जो स्वतन्त्रता संग्राम की क़ुरबानियों और ख़तरों से बचने के लिए समाज-सुधार के कृत्रिम

आक्रमण में शरण खोजते हैं। मेरा भाषण समाप्त हुआ, तो खूब जोर की तालियां बजीं और मैं यही समझा कि मैंने मैदान मार लिया।

मेरे बाद लखनऊ युनिवर्सिटी के बिरजेंद्रकुमार सिंह का नाम पुकारा गया। सुन वह सफ़ेद फ़्लालैनी पतलून पर बंद गले का स्याह जोधपुरी कोट पहने हुए था और इसमें कोई शक नहीं कि इन वस्त्रों में वह बहुत जंच रहा था। अभी उसने भाषण शुरू भी नहीं किया था कि ऊपर गैलरी में जहां चिकों के पीछे गर्ल्स कॉलेज की लड़कियां बैठी हुई थीं, दिलचस्पी की एक सरसराहट-सी दौड़ गई और चिकों के बीच में से स्याह, खूबसूरत आंखें और रंगीन आंचल झिलमिलाने लगे।

"मिस्टर प्रेज़ीडेंट !"

उसने बिलकुल शुद्ध अंग्रेजी ढंग में भाषण देना शुरू किया :

"मुझसे पहले मेरे दोस्त ने जब अपना भाषण समाप्त किया, तो सबने उत्साहपूर्वक तालियां बजाईं, मैंने भी। वह भाषण ही इतना ज़ोरदार था। मेरे विचार में सर्वोत्तम भाषण देने के लिए इनाम मेरे इस दोस्त ही को मिलना चाहिए, इसलिए कि इतने कमज़ोर विषय को इतनी ख़ूबसूरती और इतने ज़ोर-शोर से पेश करना वाक़ई बहुत बड़ा कारनामा है..."

और इससे पहले कि मैं यह फ़ैसला कर सकूं कि वह वास्तव में मेरी प्रशंसा कर रहा है, उसने मेरी तरफ़ मुड़कर देखा, और मुस्कराकर कहा :

"मुझे विश्वास है कि मेरे दोस्त एक बहुत सफल वकील साबित होंगे..."

और इस पर सारे हॉल में इतने ज़ोर की हंसी गूंजी कि उसकी लहरों में मेरे तमाम ज़ोरदार विचार बह गए।

उसे डिबेट में प्रथम पुरस्कार मिला, मुझे दूसरा। वह तीन दिन अलीगढ़ ठहरा, पहले दिन वह 'मिस्टर बिरजेंद्रकुमार सिंह' था; दूसरे दिन 'बिरजेंद्र' हो गया और तीसरे दिन केवल 'बिरजू' रह गया। जब हृदयों और विचारों का धरातल एक हो, तो पराएपन के फ़ासले कितनी

जल्द दूर हो जाते हैं !

स्टेशन पर जब मैं उसे छोड़ने गया, तो मैंने उससे पूछा, "विरजू, यह बात कि सामाजिक जागरण राजनीतिक स्वतंत्रता से अधिक आवश्यक है, तुमने ऐसे ही डिबेट की खातिर इतने जोर-शोर से कही या तुम वास्तव मे इसमे विश्वास रखते हो ?"

पच्चीस-छब्बीस बरस के बाद भी उसका जवाब मेरे कानों में गूज रहा था। उसने कहा था, "सुनो ! देशों और जातियो की स्वतंत्रता जरूरी है, लेकिन वह उतनी मुश्किल नही है। सामाजिक क्रांति, जो हमारे दिमागो को सदियो की गुलामी से आजाद करे, वह मुश्किल काम है। और जब तक हमारे दिमाग आज़ाद नही होंगे, हमारे देश की राजनीतिक स्वतंत्रता अधूरी रहेगी।"

फिर उसने बड़े पते की बातें की थी, "मान लो, हिंदुस्तान आजाद हो गया और हमारे-तुम्हारे दिमाग धार्मिक अधविश्वासो और साम्प्रदायिकता की भावना और घृणा के बंधनो से आज़ाद न हुए, तो जरा सोचो, क्या होगा ? इतने बरसो की शिक्षा और समाज-सुधार की बातें करने के बाद भी हम पढ़े-लिखे हिंदुओं में से कितने हैं, जिन्होने अपने दिमागो को पूरी तरह जात-पात के बधनों से आज़ाद कर लिया है ? तुम मुसलमानो मे कितने हैं, जो सचमुच शेख, सैयद, मुगल, पठान, जुलाहे और कुम्हार को बराबर समझते हैं ?"

तब मैंने उससे पूछा, "और विरजू, तुम ? क्या तुम्हारा दिल और दिमाग इन बंधनों से आजाद है ? क्या तुम बड़े खानदान के राजपूत होकर एक अछूत लड़की से ब्याह कर सकते हो, या किसी वेश्या की पुत्री को अपनी पत्नी बना सकते हो ?"

उसने मेरी आखों मे आखें डालकर कहा था, "अगर मुझे उससे प्रेम है, तो जरूर कर सकता हूं और समय आया, तो करके दिखा दूगा।"

और फिर उसकी ट्रेन आ गई और वह लखनऊ वापस चला गया।

उसके बाद हम एक और ऑल इंडिया डिबेट के सिलसिले मे बनारस में मिले थे और सारनाथ के खंडहरो में साथ घूमे थे और

विरजू ने मुझे महात्मा बुद्ध के जीवन की घटनाएं सुनाई थीं और कहा था, "अगर धर्म और मजहब के सवाल से मैं उकता न गया होता, तो जरूर बुद्ध की शरण चला जाता ।"

"जानते हो, महात्मा बुद्ध का देहांत कैसे हुआ ?" उसने म्यूज़ियम में महात्मा बुद्ध की शांत और मुस्कराती हुई मूर्ति के सामने खड़े होते हुए मुझसे कहा था, "वह एक गरीब अछूत के यहां भीख मांगने गए और बेचारे के घर में केवल सड़ा हुआ सूअर का मांस था । वही उसने उनकी झोली में डाल दिया और यह जानते हुए भी कि वह मांस सड़कर विषैला हो चुका था, उन्होंने उसे खा लिया । प्राण दे दिए, मगर किसी ग़रीब अछूत का दिल नहीं तोड़ा !"

फिर जब हम यही बातें सोचते हुए तांगे में शहर वापस हो रहे थे, हमने दीवारों पर 'देवदास' फ़िल्म के इश्तहार लगे देखे थे और विरजू ने कहा था, "और एक भाई देवदास थे कि पारवती को तो मंझधार में छोड़ ही था, चंद्रा का दिल भी तोड़ दिया ! शराब के समुद्र में डूब गए, मगर समाज ने इन्सानों के बीच जो खाइयां खोद रखी हैं, उनको पार न कर सके ।"

मैंने कहा था, "देवदास कोई कल्पित फ़िल्मी नायक नहीं था । शरत बाबू ने एक मामूली इन्सान का चित्रण किया है, जो समाज के मुक़ाबले में हमारी-तुम्हारी तरह कमज़ोर था ।"

और उसने कहा था, "तुम्हारी तरह कमज़ोर होगा, अगर ऐसी परिस्थिति मेरे सामने प्रकट हुई, तो मैं कमजोर साबित नहीं होऊंगा ।"

उस रात हम बनारस से विदा हो रहे थे । हमारी ट्रेनें आधी रात के बाद रवाना होनेवाली थीं । मेरी ट्रेन डेढ़ बजे, और विरजू की पौने तीन बजे । डिबेट के लिए और जितने विद्यार्थी अलग-अलग युनिवर्सिटियों से आए थे, वे सब जा चुके थे । सिर्फ़ मैं और विरजू

रह गए थे, और हमारी देख-भाल करने के लिए बनारस युनिवर्सिटी का एक एम० ए० का विद्यार्थी था, गोविंद सक्सेना।

खाने के बाद हम बातें कर रहे थे कि गोविन्द ने कहा, "रात में तो अभी कई घंटे हैं, चलिए आप लोगों को गाना सुनवा दें।"

मैंने उस वक्त तक कभी किसी वेश्या का गाना नहीं सुना था। बनारस की गानेवालियों की बड़ी तारीफ सुनी थी कि पक्के गाने, दादरा और ठुमरी में उनका जवाब नहीं। सो मैंने कहा, "यह अच्छा ख्याल है। चलो, बिरजू।"

मगर उसने कहा, "छोड़ो जी, अच्छी-खासी यह गपशप कर रहे हैं। वहां कोई मोटी, काली, भद्दी बाईजी पान खा-खाकर पक्का गाना सुनाएगी और हमें बोर करेंगी।"

इस पर गोविंद बोला, "तुम लखनऊवाले समझते हो कि लखनऊ के चौक के बाहर सौंदर्य कहीं है ही नहीं। अरे, एक बार लक्ष्मी को देख भी लोगे, तो न जाने लखनऊ की कितनी रेलें निकल जाएगी!"

मगर बिरजू नहीं माना, "तुम्हारी लक्ष्मीबाई तुम बनारसवालों को मुबारक! और सच्ची बात यह है कि कोठेवालियों का गाना सुनने में अपने को कोई दिलचस्पी नहीं है।"

और मुझे कहने का अवसर मिल गया, "क्यों, समाज-सुधारकजी, वेश्या के घर जाते हुए डर लगता है क्या?"

बिरजू को कहना ही पड़ा, "डर तो मुझे शैतान के घर जाते हुए भी नहीं लगता।" और सो, हम लोग तांगा लेकर लक्ष्मी के कोठे के लिए रवाना हो गए।

इतने बरसों के बाद भी लक्ष्मी की सूरत को मैं न भूला था। छोटा-सा, बूटा-सा कद, गदराया हुआ शरीर, गोरी तो नहीं, मगर सुनहरी रंगत, घने-लंबे बाल, जिनकी दो चोटियाँ ...
बड़ी-बड़ी आंखें और बोझल-लं...
एक अजीब
सम...

गोविंद ने मेरे कान में कहा, "इस नथनी को उतारने के लिए एक तालुकेदारसाहब पचास हज़ार तक पेश कर चुके हैं।"

मुजरा शुरू हुआ। हमें मानना पड़ा कि लक्ष्मी जितनी सुंदर है, उतनी ही सुरीली उसकी आवाज़ है। ठुमरी के बाद दादरा और दादरे के बाद ग़ज़ल। गोविंद की फ़रमाइश पर एक-आध फ़िल्मी गीत भी हुआ। महफ़िल में कितने ही लोग थे, जो भूखी निगाहों से लक्ष्मी को घूर रहे थे, लेकिन मैंने देखा था कि खुद लक्ष्मी की निगाहें बिरजू के चेहरे पर जमी हुई हैं।

और धीरे-धीरे महफ़िल बिखरती गई। अपनी-अपनी जेबें खाली करके लोग उठते गए। फिर केवल हम लोग ही रह गए। मैंने घड़ी देखी। साढ़े बारह बज रहे थे। मैंने कहा, "मेरी गाड़ी का तो वक़्त हो गया, चलो, भई गोविंद।"

गोविंद मेरे साथ उठ खड़ा हुआ, लेकिन जब बिरजू ने उठना चाहा, तो लक्ष्मी ने अपना मेंहदी लगा, छोटा-सा, नरम-सा हाथ उसके कठोर टेनिस खेलनेवाले हाथ पर रख दिया, "आपको हमारी क़सम है, कुंवरसाहब ! लखनऊ की गाड़ी में तो अभी बहुत देर है।"

बिरजू ने हैरान होकर पहले मेरी तरफ़ देखा, फिर गोविंद की तरफ़ और फिर लक्ष्मी की तरफ़, जिसका हाथ अब तक उसके हाथ पर रखा था। मुझे ऐसा लगा कि वह हमारे साथ उठना भी चाहता है और लक्ष्मी को निराश करना भी नहीं चाहता।

मैंने अंग्रेज़ी में कहा, शाम की बातचीत की याद दिलाते हुए, "दिस मीट इज़ पॉइज़न्ड (इस गोश्त में ज़हर है) !"

बिरजू ने भी अंग्रेज़ी में जवाब दिया, "आइ नो, बट बैटर टु टेक पॉइज़न दैन हर्ट सम वन्स फीलिंग्स (जानता हूं, मगर किसीका दिल दुखाने से ज़हर खा लेना अच्छा है)।"

"तो थमो, गोविंद, हम चलते हैं," मैंने किसी कदर चिढ़कर कहा। मुझे ऐसा लग रहा था कि मेरा एक घनिष्ठ मित्र एक गंदी नाली में गिर पड़ा है और वहां से निकलना नहीं चाहता।

"अच्छा, तो फिर अगले साल लखनऊ की डिबेट में मिलेंगे," बिरजू ने मुझसे संधि करने के लिए आवाज दी, मगर मैंने कोई जवाब नहीं दिया। बिरजू का जो कल्पना में चित्र मैंने बनाया था, उस क्षण में वह चकनाचूर हो गया था। मुझे नहीं मालूम था कि सामाजिक क्रांति पर भाषण करनेवाला बिरजू, महात्मा बुद्ध के पवित्र मार्ग पर चलनेवाला बिरजू एक मामूली रंडीबाज निकलेगा।

गुस्से में भरा मैं जीने से उतर ही रहा था कि आवाज आई, "सुनिए!"

मुड़कर देखा, तो लक्ष्मी थी। उसका चेहरा तमतमाया हुआ था और उसके होंठों के किनारे कांप रहे थे।

"मैंने आपके दोस्त को रोक लिया," वह बोली, "उसके लिए मैं आपसे क्षमा चाहती हूं।"

मैंने कोई जवाब नहीं दिया और मुड़कर जाने लगा। इस बार उसकी आवाज में तीर की-सी तेजी थी, "जाने से पहले यह सुनते जाइए कि मैं अंग्रेजी समझती हूं। अगर मैं जहरीला सांप हूं, तो कभी यह भी सोचिएगा कि मेरे जीवन में यह विष किसने घोला है!"

मैं कोई जवाब न दे सका और वहां से चला आया।

अगले बरस जब मैं लखनऊ ऑल इंडिया डिबेट में गया, तो मैं इस घटना को प्रायः भूल चुका था। युनिवर्सिटी के
किसी बेयरा के कोठे पर
ठहर

जरूर बुरा लगा था, मगर बाद में मैंने यह सोचकर उसे माफ़ कर दिया था कि जवानी में एक-आध बार किसके पैर नहीं लड़खड़ाते !

वह स्टेशन पर मुझे लेने आया था और अगले तीन दिन तक लगभग हर समय मेरे साथ ही रहा। वह बी० ए० फ़र्स्ट डिवीजन में पास कर चुका था और अब एम० ए० में पढ़ रहा था। कहने लगा, "मेरे मां-बाप तो चाहते हैं कि मैं आई० सी० एस० की प्रतियोगिता में भाग लूं, लेकिन मैं सरकारी नौकरी करना नहीं चाहता।"

मैंने पूछा, "तब क्या करोगे ?"

बोला, "एम० ए० करके किसी छोटे-मोटे कॉलेज में लेक्चरर हो जाऊंगा या एल-एल० बी० करके वकालत करूंगा, वरना तुम्हारी तरह मैं भी जरनलिज़्म के मैदान में आ कूदूंगा।"

उसने मुझे पूरे लखनऊ की सैर कराई। और इस बार मुझे अंदाज़ा लगा कि वह लड़कियों को कितना प्रिय था।

युनिवर्सिटी यूनियन के कैफ़े में हम चाय पी रहे थे कि करुणा बनर्जी मिल गई और कहने लगी, "देखो, मिस्टर बिरजेंद्रकुमार, अमारे बंगाली क्लब के परोगराम में ज़रूरी आना ! हम गुरुदेव का नाटक 'रक्तोकरोबी' कर रहे हैं।" और जब बिरजू ने कहा, "करुणा, मेरा आना तो मुश्किल है, यह मेरे दोस्त अलीगढ़ से आए हुए हैं, इनको लखनऊ की सैर करा रहा हूं।" तो वह बोली, "अपने फ्रेंड को भी लेकर आइए न, प्लीज़ !" और उसकी जैमिनी राय की तसवीर-जैसी बंगाली आंखों में प्यार-ही-प्यार भरा हुआ था।

वहां से वह लायब्रेरी दिखाने गया, तो सरला माथुर से भेंट हो गई, जो बिरजू को कवि-सम्मेलन का निमंत्रण देने के लिए तलाश कर रही थी। वह बोली, "बिरजेंद्रजी, यह मैंने एक नई कविता लिखी है। इसे पढ़कर बताइएगा, कैसी है? मैं कवि-सम्मेलन में यही पढ़नेवाली हूं।" जब वह चली गई, तो बिरजू ने कविता मुझे दिखाई। शीर्षक था, 'मेरे सपने'। और दो ही पंक्तियां सुनकर मैं जान गया कि इस बेचारी के सारे सपनों का केंद्र बिरजू ही था।

मेफ़ेयर रेस्तरां में चाय पीने गए, तो वहां एक बहुत सुंदर और स्मार्ट लड़की 'हैलो, विरजू !' कहकर दौड़ पड़ी और जब विरजू ने उसका परिचय कराया, तो मालूम हुआ कि वह है मोहना जसपालसिंह। मैंने देखा कि उसकी काजल-लगी आंखों में विरजू को देखते ही एक अजीब-सी आग चमक उठी है। और न जाने क्यों, मुझे उन भूखी, सुलगती आंखों से डर-सा लगा।

शाम को टेनिस क्लब में आशा सक्सेना से भेंट हुई, जिसकी प्रबल इच्छा थी कि विरजू टेनिस में मिक्स्ड डबल्ज के लिए उसका पार्टनर बन जाए। और जिस अदाज़ से वह उसे 'पार्टनर-पार्टनर' कहकर बुला रही थी, उससे स्पष्ट था कि उसे विरजू को जीवन-भर का पार्टनर बनाने में भी कोई विरोध नहीं है।

मैंने अगले दिन विरजू से पूछा, "अरे यार, तुम तो बड़े भाग्यशाली हो ! ये-सब लड़कियां तुम पर मरती हैं, मगर अब तक यह पता न चला कि तुम किसमें दिलचस्पी लेते हो। क्या सबसे ही फ़्लर्ट करते हो ?"

वह बोला, "मैं जिसमें दिलचस्पी लेता हूं, वह कोई और ही है, और उससे मैं फ़्लर्ट नहीं करता। उससे मैं बहुत जल्दी शादी करने-वाला हूं।"

मैंने कहा, "मगर इन सब सौंदर्य-शालिनी और स्मार्ट लड़कियों को छोड़कर तुमने कोई और पसंद की है, तो वह वाकई खास चीज़ होगी। हमें भी उससे मिलाओ।"

उसने मुसकराकर कहा था, "खास चीज़ तो है यह, इसीलिए तो मैंने उसे परदे में रख छोड़ा है !"

मैंने कहा, "हम मुसाफ़िरों से क्या परदा ? हम तुम्हारे रक़ीब नहीं हैं यार !"

"तो फिर आज शाम को पांच बजे मेफ़ेयर रेस्तरां में चाय पियो और उससे मिलो।"

"किससे ? मोहना जसपाल से ?"

"नहीं, मोहना तो बोर है, हालांकि मेरे माता-पिता उससे मेरी

शादी करना चाहते हैं, क्योंकि वह एक जागीरदार की बेटी है। मगर जिससे मैं तुम्हें मिलाना चाहता हूं, वह कोई और ही है, उससे मिलो।"

चार बजे मेफ़ेयर में दाखिल हुआ तो देखा, एक कोने की मेज़ पर विरजू के पास सफ़ेद साड़ी पहने एक लड़की बैठी है। मैं बिलकुल पास पहुंच गया, तब भी उसकी सूरत न देख सका।

"तुम तो उनसे मिल चुके हो," विरजू ने कहा और सफ़ेद साड़ी-वाली लड़की ने मुड़कर देखा।

वह लक्ष्मी थी।

"नमस्ते !" उसने आंखें झुकाकर कहा।

"नमस्ते," मैंने निहायत बेमन से जवाब दिया और कुरसी पर बैठ कर बैंड की धुन सुनने लगा।

उस शाम को गोमती के किनारे घूमते हुए घंटों मैं और विरजू इस विषय पर बातें करते रहे।

मैंने कहा, "विरजू, तुम पागल हो गए हो कि मोहना जसपालसिंह, आशा सक्सेना और करुणा बनर्जी और सरला माथुर-जैसी पढ़ी-लिखी बड़े खानदानों की लड़कियों को छोड़कर इस वेश्या से शादी कर रहे हो !"

"लक्ष्मी वेश्या नहीं है," उसने गुस्से से कहा था।

"वेश्या न सही, वेश्या की पुत्री सही, मगर उसमें तुमने क्या देखा है, जो सारी दुनिया की लड़कियों को छोड़कर उसे पसंद किया है ?"

"वजह तो एक ही है, मेरे दोस्त, मैं उससे मुहब्बत करता हूं और वह मुझसे मुहब्बत करती है। वह मेरी खातिर अपने घरवालों को, अपने पेशे को, अपने अतीत को छोड़कर यहां चली आई है। अगले महीने हम शादी करनेवाले हैं।"

"और तुम समझते हो तुम्हारे घर वाले तुम्हें इस बेवक़ूफ़ी की इजाज़त दे देंगे ?"

"मुझे उनकी इजाज़त नहीं चाहिए। ज़िंदगी में ऐसे फ़ैसले के लिए किसीकी भी इजाज़त नहीं चाहिए—मां-बाप की भी नहीं, दोस्तों की

। नहीं।"

"शुक्रिया!" मैंने बड़ी कड़वाहट से कहा था, "तो फिर मुझे यह व क्यों सुना रहे हो?"

चलते-चलते रुककर उसने मेरे कंधों पर हाथ रखकर कहा था, तुम्हारी इजाजत नहीं चाहिए, तुम्हारा प्रेम चाहिए। दोस्त जब नकर अपने दोस्तों के आचरण की जांच-पड़ताल नहीं करते, उनको पनी दोस्ती और मुहब्बत की छाह में शरण देते हैं।"

उसके बाद मेरा कुछ कहना बेकार था। मैंने सिर्फ इतना पूछा था, "तब तुम क्या करना चाहते हो?"

उसने कहा था, "कल ही अपने शहर जा रहा हूं, अपने मा-बाप को इस निर्णय की सूचना देने। माताजी बीमार हैं, इसलिए खत लिखकर उनको एकदम शॉक देने की बजाए खुद जाकर उनको जबानी समझाना चाहता हूं।"

"और अगर वे लोग राज़ी न हुए, तो?"

"तो उनकी मरज़ी और इजाजत के बिना यह शादी होगी।"

और उसके कहने के ढंग में इतनी दृढ़ता थी कि मैं खामोश हो गया।

अगले दिन हम इकट्ठे ही स्टेशन पर गए। पहले उसकी गाड़ी जाती थी, उसके बाद मेरी।

टिकट की खिड़की पर जाकर जब उसने कहा, "एक फर्स्ट क्लास श्यामनगर," तो बाबू ने पूछा, "सिंगिल या रिटर्न?"

"रिटर्न," उसने बड़े ज़ोर से कहा, "हमेशा वापसी का ही टिकट लेना चाहिए।"

लक्ष्मी भी उसे स्टेशन छोड़ने आई थी। जब गार्ड ने सीटी दी और झंडी हिलाई और बिरजू अपने कंपार्टमेंट में सवार हो गया, तो लक्ष्मी की आंखों में आंसू उमड़ आए।

"अरी पगली, तू बिलकुल न घबराना!"

बिरजू ने गाड़ी चलते-चलते चिल्लाकर कहा, "मैं तो परसों ही लौट

पाऊंगा, मेरे दोस्त, तीन दिन का रिटर्न टिकट !"

रेल चल पड़ी थी और रेल में बिरजू था। बिरजू के हाथ में एक आधा वापसी टिकट था। फिर रेल आगे जाकर आगे ही इंजन के धुएं के बादलों में खो गई और अब न रेल थी, न बिरजू था और न था वापसी टिकट। और अब सिर्फ प्लेटफ़ार्म पर लक्ष्मी थी और लक्ष्मी की आंखों में आंसू थे और उन आंसुओं में प्रीतम से बिछुड़ने का ग़म भी था और उसमें जल्द फिर मिलने की आरज़ू और उम्मीद भी थी।

मैं अलीगढ़ वापस चला आया और इम्तहान की तैयारी में लग गया।

चंद महीने मैंने बिरजू के ख़त का इंतज़ार किया, मगर कोई ख़त नहीं आया। मैंने सोचा, नई-नई शादी हुई है, शायद हनीमून पर कहीं गए हों। फिर इम्तहान के चक्कर में सब-कुछ भूलना पड़ा। इम्तहान ख़त्म हुआ, तो मुझे नौकरी के सिलसिले में बंबई आना पड़ा। नए-नए काम का चक्कर ऐसा पड़ा कि अलीगढ़-लखनऊ, बिरजू-लक्ष्मी, सब पुरानी यादें बनकर खो गया। १९४२ का आंदोलन आया···१९४६ में झगड़े और ख़ून-ख़राबे हुए···१९४७ में आज़ादी आई···मैं कई बार दुनिया के सफ़र को गया, ज़िंदगी में कितनी खुशियां और कितने ग़म आए और हवा के झोंकों की तरह गुज़र गए, कितनी ही कामयाबियां और उनसे भी ज्यादा परेशानियों और नाकामियों से दो-चार होना पड़ा···फिर भी बिरजू और लक्ष्मी की याद एक कोने में दुबकी रही··· और उस सुबह, जब टेलीफ़ोन की घंटी बजी, तो सवालिया निशान दिन-दहाड़े एक भूत बनकर मेरे सामने आ खड़ा हुआ।

इस बार घंटी बजी, तो वह टेलीफ़ोन की नहीं थी। मैंने दरवाज़ा खोला, एक ढीली-सी अधमैली-सी बुश्शर्ट और पतलून पहने एक बूढ़ा-सा आदमी खड़ा, मोटे-मोटे शीशों की ऐनक में से मुझे घूर

रहा था। उसके हाथ में एक प्लास्टिक का पोर्टफोलियो था, जैसा इंशोरेंस एजेंट रखते हैं। ठीक उसी वक्त, जब मैं और विरजू पच्चीस बरस के बाद मिलनेवाले थे, यह बूढ़ा इंशोरेंस का एजेंट न जाने कहां से आ टपका।

"क्या चाहिए ?" मैंने किसी कदर चिढ़ते हुए पूछा।

झुर्रियोंदार, गहरे सांवले चेहरे पर एक हलकी-सी मुस्कराहट झलक आई।

"क्यों, भूल गए ?"

"विरजू !"

अगले क्षण हम दोनों एक-दूसरे से गले मिल रहे थे।

"मैं बहुत बदल गया हूं, न ?" उसने बैठते हुए कहा, "तुमने भी नहीं पहचाना ?"

यह एक सत्य था कि पच्चीस बरस पहले के विरजू और इस बूढ़े में कोई दूर की भी समानता नहीं मालूम होती थी। मैंने सोचा, जरूर बेचारा सख्त बीमार रहा होगा, तभी तो उसके चेहरे और हाथों पर खाल उसी तरह लटकी हुई थी, जैसे उसके ढीले कपड़े। मैंने उसको धैर्य बंधाते हुए कहा, "पच्चीस बरस में हम सब ही बदल गए हैं। मुझे ही देखो, चंदिया बिलकुल साफ़ हो गई है !"

उसने कहा, "मैंने तुम्हारा नाम टेलीफोन डायरेक्टरी में तलाश किया। आशा तो न थी कि तुम मिलोगे। सुना है, अकसर तुम हिंदुस्तान से बाहर रहते हो।"

टेलीफोन के जिक्र पर मैंने कहा, "मैं तो फोन पर तुम्हारी आवाज सुनकर समझा था, कोई अंग्रेज या अमरीकन है, जिससे मैं कहीं सफ़र में मिला होऊंगा।"

"ओह, मेरा एक्सेंट ! मैं भी तो कितने ही बरस इंगलिस्तान में रहा हूं। वैसे ही बात करने की आदत हो गई है।"

न जाने क्यों ऐसा लग रहा था, जैसे वह कोई बात कहना चाहता है और उसी बात को छुपाना चाहता है।

[illegible] विचार और आशंकाएं मेरे दिमाग में आईं ।

[illegible] हो गई है, बेकार है…शायद मदद मांगने [illegible]…शायद उसकी जायदाद की [illegible] गई है, तभी बहका-बहका- [illegible] है और [illegible]…शायद उसने [illegible] किया है, इसीलिए उसकी आंखें बेचैनी से इधर-उधर देख रही हैं…[illegible] इन दोनों मुलाकातों के बीच में अपने अतीत [illegible] ।

फिर मैंने कहा, "क्यों, [illegible] भाभी साथ नहीं आई क्या ?"

उसने जवाब में मुझे चौंका दिया, "मैंने तलाक ले लिया है ।" लेकिन अब कम से कम उसकी परेशानी की वजह तो मालूम हो गई । [illegible] बरसों के साथ रहने के बाद अगर तलाक की नौबत आई है, तो [illegible] कि बेचारे की क्या हालत हो गई है ।

मैंने कहा, "बड़ा अफसोस है, बिरजू ! लेकिन हुआ क्या, जो तलाक लेना पड़ा ? इस उम्र में तो पति-पत्नी को एक-दूसरे के सहारे की सबसे ज्यादा जरूरत होती है ।"

"पति-पत्नी!" उसने इन दो शब्दों को किसी कड़वी दवा की तरह थूका, "पहले ही दिन से हमारी शादी एक झूठ थी, एक भयानक गलती थी । चौबीस बरस तक मैंने उस गलती से निवाह किया, इस झूठ को सच करने की कोशिश की, लेकिन मैं कामयाब नहीं हुआ ।"

मेरी समझ में न आया कि क्या कहूं, इसलिए मैं खामोश रहा । मेरे कुछ कहने की जरूरत भी न थी । वह बेचारा मुझसे कोई सलाह-मशवरा करने के लिए नहीं अपने दिल का बुखार निकालने के लिए आया था ।

कांपती हुई उंगलियों से उसने एक सिगार निकाला और मुंह से धुएं का एक बादल उड़ाता हुआ बोला, "तुम सोचते होगे, इतने बरसों मैं कहां गायब रहा । शादी के तुरंत बाद ही मैं बीवी को अपने मां-बाप के पास छोड़कर चला गया । आई० सी० एस० का इम्तहान दिया

और दुर्भाग्यवश पास हो गया।"

"तो तुम आई० सी० एस० में थे और हमें कभी पता भी न चला?"

"मैं किसीको बताना भी नहीं चाहता था। तुम लोग उन दिनों सरकारी नौकरियों का बायकाट कर रहे थे, सत्याग्रह करके जेल जा रहे थे। मैं किस मुह से तुम लोगों के सामने आता? इसलिए मैंने जान-बूझकर ऐसे-ऐसे स्थान चुने, जहां किसी पुराने दोस्त से मुलाकात न हो। पहले कई साल फ्रंटियर में रहा, फिर आसाम में, फिर बर्मा में··· वहीं हमारा पहला लड़का पैदा हुआ···"

कितनी ही देर तक वह धुएं के बादलों में न जाने कैसी तसवीरें बनाता-बिगाड़ता रहा।

फिर वह बोला, "मगर वह हमारा लड़का नहीं था, वह तो उसका लड़का था, जो मेरे एक चपरासी से पैदा हुआ था। जब मुझे यह मालूम हुआ, तो तुम समझ सकते हो, मेरी क्या हालत हुई होगी। छह महीनों तक तो मैं बिलकुल पागल हो गया। शराब तो मैं पहले भी पीता था, अब मैंने अपनी ज़िल्लत को डुबोने के लिए अंधाधुंध पीना शुरू कर दिया। जब ह्विस्की से काम न चला, तो कोकीन खाने लगा। तीन महीने पागलखाने में इलाज कराया और जब इलाज कराकर किसी क़दर अपने पर क़ाबू पाया और बाहर निकला, तो नौकरी से इस्तीफ़ा देना पड़ा। ज़लील होकर निकाले जाने से यही बेहतर था कि मैं खुद ही बीमारी का बहाना करके वक़्त के पहले पेंशन की दरख्वास्त दे दूं। मैंने उसकी मिन्नत की कि मुझे तलाक़ दे दो, बच्चा ले जाओ, मेरी सारी पेंशन ले लो, मुझे छोड़ दो, ताकि मैं अपनी नई ज़िन्दगी बना सकूं। लेकिन वह न मानी। बोली, 'तुमने मेरी ज़िन्दगी तबाह की है। अब तुम मुझसे इतनी आसानी से छुटकारा न पाओगे।' "

"फिर?" मैंने नर्मी से कहा।

"फिर मैं उन दोनों को लेकर इंगलिस्तान चला गया। हिन्दुस्तान

मैं हाथ में किसीको भी मुंह दिखाने के क़ाबिल नहीं रह गया था। पेंशन वगैरह मिलाकर जितना रुपया वसूल हुआ, उससे मैंने लंदन में एक मकान खरीद लिया। एक हिस्से में हम खुद रहते थे और बाक़ी में हिंदुस्तानी और अमरीकन विद्यार्थी किराया देकर रहते थे। बस, यही हमारे गुज़ारे की सूरत थी।"

"फिर ?"

"फिर वही पुरानी कहानी दुहराई जाती रही। अब मुझमें इतनी ताक़त भी नहीं थी कि मैं उस दुश्चरित्रा से कोई पूछ-ताछ भी कर सकता। रात को जब तक 'पब' बंद न होता, मैं वहां बैठा शराब पीता रहता था और वह उन किरायेदार नौजवान विद्यार्थियों से किराया वसूल करती रहती थी।...दस साल में तीन और बच्चे हो गए—एक बिलकुल काला-कलूटा, एक सांवला, एक गोरा।"

मुझे अपने दोस्त की हालत पर रहम भी आ रहा था और गुस्सा भी। आखिर मुझसे न रहा गया और मैं बोल ही पड़ा, "और तुम नामर्दों की तरह यह सब देखते रहे और तुमसे यह न हुआ कि दो जूते रसीद करते और निकाल बाहर करते उस छिनाल को! मैंने तो चौबीस बरस हुए, तुमसे कहा था, 'बिरजू, रंडी की बेटी से सिवाय बेवफाई के तुम और कुछ न पाओगे'!"

"रंडी की बेटी ?" उसने ताज्जुब से दुहराया।

"हां-हां, रंडी की बेटी, लक्ष्मी!" मैंने नफ़रत से भरपूर लहजे में वह नाम ले ही डाला, जो इतनी देर से हम दोनों के बीच एक पहेली बना हुआ था, जिसको बूझने की हिम्मत न मुझमें थी, न उसमें।

"लक्ष्मी ?" उसने ऐसे लहजे में दुहराया, जैसे उम्र में पहली बार नाम सुना हो। फिर वह बेतहाशा हंस पड़ा और हंसता रहा। एक कहकहे के बाद दूसरा कहकहा। उसे हंसी का दौरा पड़ा था, लेकिन उस हंसी में एक खोखली-सी आवाज़ थी, कोई प्रसन्नता नहीं थी। मैं आश्चर्य से उसका मुंह ताकता रहा।

"तो तुम समझ रहे हो कि मैं अब तक तुमसे लक्ष्मी का ज़िक्र कर

रहा हूं ?"

"तो और क्या ?" मैंने कहा, "उसीसे तो तुमने शादी की थी, न ?"

"काश, ऐसा ही होता, दोस्त !" उसने एक लंबी-सी ठंडी-सी सांस भरकर कहा, "मगर जिससे मेरी शादी हुई, वह वेश्या की पुत्री लक्ष्मी नहीं थी, एक जागीरदार की बेटी मोहना थी।"

"मोहना ?" और मैंने उस सुंदर मुख को याद करने की कोशिश की, जो मैंने लखनऊ के मेफेयर रेस्तरां में देखा था। और छब्बीस बरस के बाद भी मैंने देखा कि काजल की डोरीवाली उसकी आंखों में एक अजीब आग चमक रही है। उस वक्त मुझे क्या मालूम था कि एक दिन उसी आग में बिरजू की जिंदगी झुलस जाएगी ?

"और लक्ष्मी ?" मैंने पूछा, "लक्ष्मी का क्या हुआ ? आखिरी बार जब हम लखनऊ मिले थे, मुझे याद पड़ता है, तो तुम तीन दिन का वापसी टिकट लेकर अपने घर जा रहे थे, अपने मां-बाप को उस शादी की सूचना देने ?"

जवाब में उसने कुछ नहीं कहा। जेब से एक पुराना बटुआ निकाला और उसमें से एक तह किया हुआ कागज़। इस कागज की तहों में से एक रेलवे टिकट का आधा हिस्सा निकला, जो बरसों के बाद इतना पुराना तो हो गया था कि इस पर छपे हुए सब अक्षर गायब हो गये थे। सिर्फ उसकी साइज से मालूम होता था कि कभी यह रिटर्न टिकट का वापसीवाला आधा हिस्सा रहा होगा।

अब मैं कुछ-कुछ समझा कि क्या हुआ होगा।

"तो जब तुम घर पहुंचे, तो अपने माता-पिता, कुंवरसाहब और कुंवरानी को सहमत न कर सके ? उन्होंने तुम्हें जायदाद से बेदखल करने की धमकी दी ?"

उसने सिर हिलाकर स्वीकार किया कि ऐसा ही हुआ था।

"उन्होंने तुम्हें लखनऊ वापस जाने से भी रोक दिया?"

उसने सर हिलाकर हामी भरी।

देने पर राज़ी हुई है।"

"तो क्या वह···मोहना···हमेशा से ऐसी थी ?"

"नहीं, पहले ऐसी नहीं थी। तभी तो पच्चीस बरस निबाह करने की कोशिश की मैंने।"

"फिर ऐसी कैसे हो गई ?"

कुछ देर तक विरजू शांत रहा। उसने एक नया सिगार जलाया। धीरे-धीरे उसने कई कश खींचे। फिर वह बोला, "दोषी मैं ही हूं। मैं उसे वह न दे सका, जो वह अपना अधिकार समझती थी। कोशिश करने के बावजूद मैं उससे मुहब्बत न कर सका।"

"तो क्या उसे लक्ष्मी के बारे में मालूम था ?"

"शादी के साल-भर बाद मालूम हो गया था। उस समय मेरी पोस्टिंग फ्रंटियर में थी। एक रात मैं क्लब से बहुत शराब पीकर लौटा था। जब मैं अपने बेड-रूम में सोने के लिए गया, तो चांदनी में देखा कि सफेद कपड़े पहने लक्ष्मी मेरे पलंग पर लेटी है। मैंने उसे अपने *आलिंगन में कस लिया और बहुत प्यार किया, बहुत प्यार किया।* उसने कहा, 'विरजू, तुम तो रो रहे हो? क्या हुआ ?' मैंने कहा, 'वायदा करो, अब तुम मुझे कभी छोड़कर न जाओगी, लक्ष्मी···' लेकिन वह लक्ष्मी नहीं थी, वह मोहना थी और उस रात के बाद से वह मोहना भी नहीं रही, कुछ और ही हो गई। पहले उसने मेरे साथ शराब पीना शुरू किया, फिर दूसरों के साथ। उसके बाद जो हुआ, वह तुमको मालूम ही है। मगर मैं अब भी उसे दोष नहीं देता। अपनी दुर्दशा और उसकी दुर्दशा दोनों का जिम्मेदार मैं हूं।"

"और लक्ष्मी ?"

"उसकी जिंदगी भी मेरी वजह से तबाह हो गई। जब मेरा सहारा छूट गया, तो उसे अपनी मां के पास वापस जाना पड़ा। और फिर उसे वही सब करना पड़ा, जिससे केवल मैं उसे बचा सकता था। बनारस से दिल्ली के चावड़ी बाज़ार में आई। वहां से कलकत्ता के सोना गाछी में। वहां से बंबई की फ़ारस रोड पर। अब सुना है, बूढ़ी, बीमार और

इस धंधे के लिए बेकार होकर बनारस लौट गई है और वहां किसी मंदिर की सीढ़ियों पर पड़ी है…और…और…"

"और ?" मैंने पूछा।

"मैं उसके पास जा रहा हूं।"

उस शाम को जब मैं उसे छोड़ने स्टेशन गया और हम टिकट खरीदने लगे, तो बाबू ने पूछा, "सिंगल या रिटर्न ?"

बिरजू ने जल्दी से कहा, "सिंगल !"

और फिर प्लेटफ़ार्म पर पहुंचकर मुझसे बोला, "यह मेरा आख़िरी सफ़र है। इस बार मुझे वापसी टिकट की ज़रूरत नहीं।"

और ट्रेन छूटने से पहले मैंने एक अजीब चमत्कार देखा। वह झुर्रियोंदार चेहरे और खिचड़ी बालोंवाला बूढ़ा अब बूढ़ा नहीं लग रहा था, उसके गाल एक अजीब प्रसन्नता और जोश से तमतमा रहे थे। उसकी आंखों में एक नई ज़िंदगी चमक रही थी। उसकी आवाज़ में एक करारापन आ गया था…एक क्षण के लिए मुझे वह अपना वही पच्चीस बरस पहलेवाला बिरजू लगा।

मैंने कहा, "बिरजू, लक्ष्मी भाभी को मेरा प्रणाम ज़रूर कहना ! हम तुम्हारे रक़ीब नहीं हैं, यार !" और मैंने देखा कि वह नए-नवेले दूल्हे की तरह शरमा रहा है।

पेरिस की एक शाम

हमसफ़र लिमिटेड एजेंसी के दफ्तर मे कदम रखते ही आदमी का मन अनायास प्रशंसा करने को हो उठता है। वहा की हर चीज पर सफाई और सुरुचि की छाप थी। हजारों लोग इस एजेंसी के द्वारा टिकट खरीदकर ससार के दूर-दूर के कोनो की यात्रा कर चुके थे। अनुभवी यूरोपियन यात्री और देश-विदेश घूमे हुए हिंदुस्तानी सभी तो एजेंसी के दफ्तर की आधुनिकतम सजावट से प्रभावित और वहा काम करनेवालो की शिष्टता सद्‌व्यवहार और असाधारण प्रबंध-कुशलता के कायल थे। आसमानी रग की दीवारो पर बने चित्र एक सीलोनी चित्रकार की कल्पना की उड़ान का सुदर नमूना थे। उसकी तूलिका और कल्पना की उड़ान बबई और श्रीलंका के कला-प्रेमियों में पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुकी थी। ये चित्र उन सुदर और रमणीक स्थानों के थे, जहां पहुंचने की सुनहरी कुंजी हमसफर लिमिटेड के पास की शक्ल की थी। मैक्सिको के किसानो के झोपड़े यूनान के संगमर्मर के खंडहरों से मिले हुए थे। बड़े-बड़े गिलासो से शैंपैन उबल-उबलकर कमल के फूलो से ढकी हुई झील में गिर रही थी।

फौलाद का चमकदार आधुनिकतम फर्नीचर, कीमती मेजें, जिनका ऊपर का हिस्सा शीशे का था, बिजली के न दिखनेवाले लट्टुओं से निकलती हुई रहस्यपूर्ण रोशनी, मोटे कीमती क़ालीन, और बाहर के कमरे की एक पूरी दीवार पर प्लास्टर से बना हुआ दुनिया

का नक़्शा। सारांश यह कि दफ़्तर की हर चीज़ मैनेजिंग डायरेक्टर मोहन पसवानी की सुरुचि और कलाप्रियता का प्रतीक थी। मोहन पसवानी के सिंधी लखपति पिता की सिल्क की दूकानें संसार के हर कोने-कोने में फैली हुई थीं। कोलंबो, हांगकांग और टोकियो से लेकर अमरीका में वैंकूवर तक में शाखाएं थीं। इसीलिए बचपन से ही मोहन को घूमने-फिरने का काफ़ी मौक़ा मिला। पेरिस के लैटिन क्वार्टर में छः महीने छुट्टियां बिताने के बाद उसे कला का भी कुछ ज्ञान और उसके प्रति रुचि हो गई थी। उसने अपने उस सारे ज्ञान और अनुभव से पूरा लाभ उठाया। और यह उसीका परिणाम था कि हमसफ़र लिमिटेड के दफ़्तर की हर चीज देखनेवालों को भ्रमण का आमंत्रण देती प्रतीत होती। सुंदर रंगीन चित्र, अजीबोग़रीब सजावट के सामान, नन्हें-मुन्ने इफ़ेल टावर, शीशे के डिब्बों में रखे हुए लकड़ी के ताजमहल, न्यूयार्क की गगनचुंबी इमारतों के मॉडल और इसके साथ सुंदर वेश-भूषावाले असिस्टेंटों की अमरीकन टोन में बातचीत, उनकी चुस्ती और सद्-व्यवहार—कहीं भी कोई ऐसी चीज़ न थी, जिस पर उंगली उठाई जा सके। हर बात से प्रबंध-कुशलता प्रकट होती थी, हर चीज़ से सुरुचि टपकती थी। केवल एक चीज़ वहां के स्तर के अनुरूप न थी और सौंदर्यप्रिय दृष्टि में खटकती थी, और वह थी साधारण शक्ल-सूरत और सांवले रंग की रिसेप्शनिस्ट कमला कमतेकर, जो नई-नई नियुक्त हुई थी। वह हमसफ़र लिमिटेड के सुंदर और नफ़ासत-भरे वातावरण में तनिक भी न फबती थी। उसकी घर की धुली हुई सफ़ेद साड़ी, नारियल के तेल से चमकते हुए बालों और कसे हुए जूड़े को देखकर न्यूयार्क या पेरिस के रोमांटिक वातावरण की जगह पूना, सतारा या महाराष्ट्र के किसी गुमनाम क़सबे का ख़याल आता था।

शार्कस्किन के बढ़िया सूट पहननेवाले टूरिस्ट कमला कमतेकर

का रूप-रंग और पहनावा देखकर नाक-भौं चढ़ाते। बल्कि कुछ बेतकल्लुफ लोग तो मैनेजिंग डायरेक्टर से शिकायत कर बैठे कि मामूली शक्ल की लड़की एजेंसी के अप-टु-डेट और सुंदर वातावरण से बिलकुल मेल नहीं खाती और उसकी उपस्थिति यहां की परंपरा के एकदम विरुद्ध है, क्योंकि इससे पहले यहां काम करनेवाली लड़कियां एक-से-एक सुंदर और फैशनेबुल थीं।

"यही तो सारी कठिनाई है," मोहन वसवानी मुस्कराते हुए जवाब देता, "इसमें शक नहीं कि हसीन लड़कियों के कारण हमारे आफिस की खूबसूरती बहुत बढ़ जाती थी, लेकिन आपको अंदाजा नहीं कि मुझे उसकी कितनी भारी कीमत चुकानी पड़ती थी। इस काम में हसीन चेहरे के अलावा थोड़े-बहुत ज्ञान और प्रतिभा की भी जरूरत होती है। सारी दुनिया का भूगोल रिसेप्शनिस्ट की जबान की नोक पर होना चाहिए, और हर देश के संबंध में कुछ-न-कुछ सामान्य-ज्ञान भी हो, तो बहुत अच्छा है। यात्रा और भ्रमण से कुछ दिलचस्पी भी हो। इन सब चीजों को सीखने में काफी समय लग जाता है। लेकिन होता यह है कि जब तीन-चार महीने में लड़की काम का तौर-तरीका सीख जाती है, तो आए साहिबान में से किसीको उनसे प्रेम हो जाता है और कुछ दिन के बाद मुझे त्यागपत्र और विवाह का निमंत्रण एक ही डाक से प्राप्त होता है।"

फिर अपनी बात के सबूत में मोहन वसवानी याद की सुई घुमाता—"मिस गोलवाला तो आपको याद होगी। बंबई की सोसायटी की तो वह जान थी। जब उसने हमारी एजेंसी में काम शुरू किया, तो काफी चुलबुली पैनी थी। हां, तो साहब, जब किसी-न-किसी तरह उसे यह याद हो गया कि 'पडिंग' इंगलैंड में एक हवाई क्षेत्र का नाम है, चीन के किसी शहर का नहीं, और 'कॉमेट' पुच्छल तारे और 'कौन्स्टेलेशन' तारों के समूह को नहीं कहते, बल्कि ये हवाई जहाज की दो किस्में हैं, तो मालूम हुआ कि लखपति डोडी कूपरवाला से उसकी शादी तय हो गई। और यह हुआ इस तरह की डोडी 'सिटर देम्स'

में भाग लेने के लिए जेनेवा जाना चाहता था, लेकिन किटी ने भूल से उसके लिए इटली के बंदरगाह जिनोआ का जल-मार्ग का टिकट खरीद दिया। यह बात बोबी को उस समय मालूम हुई, जब स्विटज़रलैंड जानेवाला जहाज कभी का उड़ चुका था। बोबी गुस्से में भन्नाता हुआ हमारे आफ़िस में पहुंचा, यह मालूम करने को कि यह ग़लती किसकी बेवकूफ़ी से हुई है, और यहां किटी ने कुछ ऐसे 'चार्मिंग' अंदाज़ से माफ़ी मांगी कि बोबी का मूड बदल गया और वह किटी को शाम को डांस की दावत दे गया और नतीजा वही हुआ, जो सबको मालूम है।

"और वह मृगनयनी बंगाली सुंदरी माया गुप्ता से भी आप शायद मिले हों, जिसने ऑक्सफ़ोर्ड में शिक्षा प्राप्त की थी। वह वहां कुछ कविता और नाटक लिखने में दिलचस्पी रखती थी। उसे हमारे दफ़्तर में काम करते हुए महीना भी न हुआ था कि भूतपूर्व टेनिस-चैंपियन सोनी शर्मा, जो 'बांबे न्यूज' के स्पोर्ट्स-एडीटर हैं, उस पर मोहित हो गए। वह आए थे हमारे यहां हेलसिंकी जाने के लिए हवाई जहाज़ की सीट बुक कराने को, जहां वह अंतर्राष्ट्रीय खेलों की प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए जा रहे थे। लेकिन हमारी सुंदर रिसेप्शनिस्ट की नशीली आंखों ने उन्हें सब-कुछ भुला दिया और दो हफ्तों के बाद कश्मीर जाकर हनीमून मनाने के लिए उन्होंने हमारी एजेंसी से ही सीटें बुक करवाईं।

"और आशा मथानी, जो अपनी अनुपम सुंदरता के कारण पार्टीशन से पहले 'मिस कराची' चुनी गई थी, उसकी कहानी तो इतनी ताज़ी है कि दोहराने की ज़रूरत नहीं। पर मेरे धैर्य का बांध टूट गया गोआनी सुंदरी डायना कौलिस की घटना के बाद, जो एक धनी अमरीकी के साथ नौ-दो-ग्यारह हो गई। ज़रा देखिए तो, वह भला आदमी आया था हमारे यहां अपने ट्रैवलर चैक भुनाने और हमारी रिसेप्शनिस्ट को ले उड़ा! बस उसी दिन मैंने निश्चय कर लिया कि भविष्य में हमसफ़र लिमिटेड में केवल साधारण रंग-रूप और सीधी-सादी वेशभूषावाली लड़की काम करेगी।"

और इस प्रकार कमला कामतेकर, जो भूगोल में बी० ए० ऑनर्स थी, घर की धुली हुई सफ़ेद साड़ी पहने, बालों में नारियल का तेल लगाए, न होंठों पर लिपस्टिक, न सांवले रंग को सुर्ख़ी-पाउडर से छिपाने की कोशिश, लोहे के सस्ते-से फ्रेम के पीछे छोटी-छोटी आंखें झपकाती—सारांश यह है कि हर दृष्टि से अपने से पहले काम करने-वाली सुंदर और फ़ैशनेबुल लड़कियों के सर्वथा विपरीत, हमसफ़र लिमिटेड के दफ़्तर में काम करने पहुंच गई।

महीने-भर के अंदर-अंदर दफ्तर के सब लोगों पर उसकी योग्यता का सिक्का जम गया। एक तो भूगोल की शिक्षा उसके बहुत काम आई। नगरों के अजीब-अजीब और अपरिचित नाम, जैसे काम-चेत्तका, व्यूनोज आएरीज और याकोहामा उसके लिए नए नहीं थे और कुछ ही दिनों में यात्रियों और भ्रमणार्थियों की आवश्यकताओं और रुचि की और बातें भी उसे कंठस्थ हो गईं। फिर कुछ दिनों के बाद तो वह अंतर्राष्ट्रीय भ्रमण की बोलती-चालती इन्साइक्लोपीडिया बन गई। मसलन, उसे सानफ्रांसिस्को से लॉस ऐंजलीज और याकोहामा से नागासाकी तक का ठीक-ठीक फ़ासला और न्यूयार्क से रियो डी जिनेरो का हवाई जहाज़ का किराया जबानी याद था। जितनी देर किसी दूसरे आदमी को नक्शे में लंदन ढूंढने में लगती, उतनी देर में तो वह अफ़रीका के बिलकुल भीतरी इलाकों में यात्रा करने का पूरा कार्यक्रम तैयार कर देती।

विदेशी मुद्रा और परिवर्तन की दर उसे ऐसी याद थी कि वह मिनटों में ज़बानी हिसाब करके बता सकती थी कि हज़ार रुपए या हज़ार स्वर्ण या हज़ार क्रोनन के बदले में कितने डालर, कितने सेंट मिलेंगे। धीरे-धीरे हमसफ़र लिमिटेड के सब ग्राहकों को भी उसकी योग्यता और उत्तरदायित्वपूर्ण अनुभव का क़ायल होना ही पड़ा। अब वे बहुधा

अपनी यात्रा का कार्यक्रम बनाते समय उससे सलाह-मशविरा लेते और उसकी राय की क़द्र करते। क्या हुआ यदि हमसफ़र लिमिटेड की नई रिसेप्शनिस्ट सौंदर्यप्रिय दृष्टि के मापदंड पर पूरी न उतरती थी, लेकिन उसकी राय और सलाह पर चलनेवालों को यात्रा में कभी कोई कष्ट न होता था।

कमला कमतेकर हमसफ़र लिमिटेड में काम करने से पहले स्कूल में पढ़ाती थी, इसलिए अपने नए काम में भी उसने अध्यापिकाओं का-सा संयम दिखाया। एजेंसी के ज़रिये यात्रा करनेवालों के प्रोग्राम और उनकी समस्याओं में वह मां की-सी हमदर्दी और दिलचस्पी दिखाती, "मिस्टर मूलजी! आपने गर्म बनियाइनें तो काफ़ी तादाद में रख ली हैं न? इंगलैंड के मौसम का कुछ भरोसा नहीं। वहां कभी-कभी वसंत ऋतु में भी कड़ी सरदी पड़ने लगती है।"

"मिसेज सक्सेना! आप बेफ़िक्री से बच्चे की गाड़ी साथ ले जाइए। जहाज के डेक पर उसे घुमाने की बहुत जगह होती है!"

किसीको वह ट्रांस एटलांटिक जहाज़ पर यात्रा करते हुए अंतर्राष्ट्रीय पत्तेबाज़ों से बचने की ताकीद करती, तो किसीको रोम के दर्शनीय स्थानों के नाम बताती।

यदि कोई तरुण विद्यार्थी पेरिस के रास्ते इंगलैंड जाने का टिकट ख़रीदता, तो कमला कमतेकर उसे तुरंत उपदेश देती, "मिस्टर! आप पेरिस जा तो रहे हैं, पर याद रखिए कि वहां देखने योग्य चीज़ें हैं लूवरे का म्यूज़ियम, वार्साई के राजमहल या फिर यूनेस्को हेड क्वार्टर्स। यह नहीं कि आप मोंमार्त की रंगीन रातों के चक्कर में पड़कर मां-बाप के गाढ़े पसीने की कमाई बरबाद करें!"

कभी-कभी कोई उसके विस्तृत ज्ञान से प्रभावित होकर पूछता, "मिस कमतेकर! आपको ये सब बातें कैसे मालूम हुई? क्या आप इन सब स्थानों पर घूम आई हैं?"

"जी नहीं, अभी तक तो ऐसा मौक़ा नहीं मिला।" और दबाने की चेष्टा करने पर भी उसके मुंह से एक ठंडी सांस निकल जाती,

क्योंकि इस जवाब के पीछे मिस कमतेकर के जीवन की सबसे बड़ी इच्छा का रहस्य छिपा था।

यद्यपि मिस कमतेकर का रूप बहुत साधारण और स्वभाव देखने में अध्यापिकाओं की भांति शुष्क और नीरस लगता था, लेकिन वास्तव में उसका स्वभाव अत्यंत रोमांसप्रिय था। स्कूल में ही भूगोल पढ़ते समय, दूर-दूर के देशों का हाल पढ़कर वह वहां घूमने के स्वप्न देखने लगी थी। जैसे-जैसे उम्र बढ़ी, यह शौक बढ़ता गया, यहां तक कि दुनिया के दूर दूर के देशों का भ्रमण करना, अमरीकी पत्रिकाओं और कुछ अंग्रेजी रोमांटिक उपन्यासों की नायिकाओं की भांति अनजाने स्थानों में मनोरंजक घटनाओं से साक्षात्कार करना उसके जीवन की सबसे बड़ी इच्छा बन गई। वैसे तो दरिद्र कुटुंब की, छोटे-से नगर में बसनेवाली लड़की के लिए, जिसने छात्रवृत्ति ले-लेकर और फीस माफ करा-कराके स्कूल का और ट्यूशन करके तथा पूना के राशन-आफिस में हाफ टाइम काम करके घर का खर्च चलाया था, बंबई पहुंच जाना ही बहुत बड़ी बात थी। शानदार समुद्री जहाज पर देश-देश की सैर करना या तीव्रगामी हवाई जहाज पर चंद घंटों में एक देश से दूसरे देश पहुंच जाना तो उसके लिए उन चीजों में से था, जो केवल स्वप्न की दुनिया में संभव हैं। उसके लिए तो यही पर्याप्त था कि उसे हमसफर लिमिटेड में काम मिल गया था, जहां वह यात्रा और भ्रमण के मनोहर जगत के इतने निकट थी।

उसका जीवन यों ही स्वप्न देखते-देखते बीत रहा था। जब वह शाम को चर्चगेट से दादर जाने के लिए लोकलट्रेन में सवार होती, तो कल्पना-जगत में वह उस ट्रेन में यूरोप की यात्रा कर रही होती। उसकी चाल तक जानेवाली तंग गलियां लंदन के साहम हाउस के इलाके या पेरिस की पुरानी गलियों में बदल जातीं। कभी

दफ़्तर में उसकी मेज पर रखा हुआ कॉन्सटेलेशन हवाई जहाज का मॉडल उसकी कल्पना की उड़ान का साथ देता और उसे कभी काहिरा, कभी रोम, कभी लंदन और कभी न्यूयार्क की सैर कराता। लेकिन उसकी सबसे बड़ी इच्छा थी पेरिस जाने की। पेरिस! विक्टर ह्यूगो, ड्यूमा और जोला का देश, मोपासां की कहानियों की पृष्ठभूमि और फ्रांस के टूरिस्ट-विभाग द्वारा प्रकाशित उन सब रंगीन सुंदर पैंफ़लेटों और चित्रों का वास्तविक संग्रह, जिनसे उसका आफ़िस अटा पड़ा था।

वह जानती थी कि ये सब स्वप्न की-सी बातें हैं। पर कभी-कभी स्वप्न सच्चे भी हो जाते हैं और शायद उसी हलकी-सी आशा पर उसने चुपके-चुपके बाहर जाने की सब तैयारियां कर रखी थीं। क्या पता, अचानक कोई ऐसा अवसर आ जाए। इसीलिए उसने एजेंसी में काम शुरू करने के दूसरे दिन ही पासपोर्ट के लिए दरख़्वास्त दे दी थी और अब उसकी डेस्क की सबसे निचली ड्रार में उसका पासपोर्ट बिलकुल तैयार रखा था। वहीं कॉलरा, टाइफ़ायड और चेचक के सर्टीफ़िकेट भी रखे थे, जिनको हर छः महीने के बाद दोबारा बनवाना पड़ता था। लेकिन बार-बार टीके लगवाने की तकलीफ़ या उसकी फ़ीस भरना उसे ज़रा भी न अखरता। कौन जाने किस दिन वह सुनहरा क्षण अचानक आ जाए और वह पेरिस जा सके! उस मौक़े के लिए उसे हर घड़ी तैयार रहना चाहिए।

और सचमुच वह घड़ी ऐसी अचानक और इतनी जल्दी आई कि स्वयं उसने कभी इसकी कल्पना नहीं की थी। शुरू में तो किसी तरह उसको अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था कि उसके हाथ में सचमुच हवाई जहाज का टिकट है, जिससे वह उसी रात को पेरिस जा सकती है।

शाम हो चुकी थी। एक-एक करके दफ़्तर से सब लोग जा

चुके थे। नित्य की भांति वह डाक के पत्रों को छांटने में व्यस्त अकेली रह गई थी। झुटपुटे का स्वप्निल समय था। यह समय, जब दबी हुई इच्छाएं और सोए हुए अरमान जाग उठते हैं। हमेशा इसी समय इधर उधर पड़े हुए रंगीन पैम्फलेटों, मनोरंजक स्थानों के चित्रों और विज्ञापनों, कूपनों, रसीदों और रिज़र्वेशन के टिकटों में से उसके स्वप्न झिझकते, शरमाते, झांकते थे। इसीलिए उस समय टिकट को देखते हुए भी वह यही समझती रही कि वह नित्य की भांति जागते में स्वप्न देख रही है। लेकिन अंत में उसे मानना पड़ा कि टिकट असली है—करकराते कागज़ पर एक प्रसिद्ध अंतर्राष्ट्रीय हवाई-कंपनी का मिस कमला कासनेकर के नाम पेरिस का वापसी टिकट, जिससे वह उसी रात को पेरिस रवाना हो सकती थी। अवश्य ही यह कोई चमत्कार था।

लेकिन मिस कासनेकर को यह भी पता था कि यह चमत्कार हुआ कैसे। कोई बात भी ऐसी नहीं थी जो असंभव कही जा सकती हो। परंतु इन घटनाओं का इस क्रम से एक के बाद एक होना चमत्कार ही था। उदाहरणार्थ, यह बात कोई ऐसी असंभव नहीं थी कि अत्यधिक लोकप्रिय गोल्डन जुबली हिट फिल्म 'कागज़ी नार' की नायिका देवीबाला के मन में पेरिस जाकर छुट्टी मनाने की धुन समाई। और यह बात भी समझ में आ सकती थी कि वह पत्र-प्रतिनिधियों और पब्लिसिटी से बचने के लिए किसी फर्ज़ी नाम से टिकट खरीदना चाहती थी, ताकि किसीको उसके जाने की खबर न हो। (यद्यपि यह भी संभव है कि ख्याति से बचने की इच्छा और गुमनामी के शौक का ढोंग इसलिए रचाया हो कि बाद में इसके द्वारा उसकी 'विनम्रता' का डंका पीटा जा सके।)

कारण कुछ भी हो, देवीबाला के लिए अपनी इस इच्छा की पूर्ति कोई बड़ी बात नहीं थी, अतएव जब वह कीमती सेंट की सुगंधि से महकती हुई, अजंता स्टाइल का जूड़ा बनाए, यूनानी ढंग की चप्पलों में अपने सदली पांव और उनके क्यूटेक्स लगे हुए लाल नाखूनों का प्रदर्शन करती हुई हमसफर लिमिटेड एजेंसी के दफ्तर में पहुंची, तो उसने

[illegible] स्वर में कहा, "आह ! स्त्री होने के नाते तुम्हें मेरा यह सीक्रेट रखना होगा। हम दोनों के अतिरिक्त [illegible] किसीको यह बात न मालूम हो कि मैं दो सप्ताह के लिए इटली, स्विट्ज़रलैंड और फ्रांस छुट्टियां मनाने जा रही हूं। लेकिन अधिक समय मैं 'पेपारी' में बिताना चाहती हूं।" उसने फ्रांसीसी उच्चारण की नकल करते हुए पेरिस को 'पेपारी' कहा, "लेकिन मैं पब्लिसिटी से बहुत घबराती हूं, इसलिए मैं चाहती हूं कि किसी और नाम से यात्रा करूं।"

"यानी आप अपने नाम से टिकट नहीं लेना चाहतीं ?" कमला ने [illegible]निक आश्चर्य से पूछा।

"आप ठीक समझीं ! मैं आपको क्या बताऊं कि 'सिने फ़ैंस' के [झ]ुण्ड से मेरा कितना नाकों दम है। कहीं जाऊं, ये लोग मेरा पीछा [न]हीं छोड़ते। आप तो स्वयं मेरी तरह स्त्री हैं। समझ सकती हैं कि [ए]क स्त्री को प्राइवेसी की कितनी आवश्यकता होती है।"

कमला ने 'अपनी तरह की स्त्री' की बारीक शेफ़ून की साड़ी की [ओ]र देखा, जिसमें से उसकी किमखाब की चोली और पाउडर लगी [हु]ई कमर साफ़ दीख रही थी, और फिर अपनी घर की धुली हुई साड़ी [क]ी ओर देखा और देवीबाला की 'प्राइवेसी' की आवश्यकता पर मन-[ही]-मन मुस्कराई। वह उस आवश्यकता को ख़ूब समझ सकती थी। [कि]ंतु देवीबाला की यात्रा का कार्मक्रम बनाते हुए एक ही प्रश्न बार-[बा]र उसके दिमाग़ में गूंज रहा था, "आखिर यह कहां का न्याय है ? [इस]की तरह मैं भी जहां चाहूं, क्यों नहीं जा सकती ? आखिर क्यों ? [आ]खिर क्यों ?"

"टिकट किस नाम से बनाऊं ?" उसने अपने मन में उठनेवाले [तूफ़ा]न को दबाते हुए पूछा।

"अरे जो समझ में आए, लिख दो," देवीबाला ने बेपरवाही [से] कहा।

"कमला कमतेकर नाम कैसा रहेगा ?" आखिर मन की इच्छा

मतायास मुख पर आ गई, फिर उसने तनिक झिझकते हुए कहा, "यह मेरा नाम है।"

भला देवीबाला को इस पर क्या आपत्ति हो सकती थी? उसने तुरंत चैक काट दिया और चल दी। एजेंसीवालों ने नियत तिथि के लिए उसका टिकट खरीद लिया। लेकिन ठीक रवानगी की शाम को दफ्तर बंद होने से कुछ मिनट पूर्व देवीबाला का टेलीफोन आया कि कुछ अनिवार्य कारणों से उस शाम को उसका जाना असंभव है। और कारण यह था कि सेंसर की काट-छांट के कारण उसकी तैयार फिल्म के कुछ दृश्यों की फिर से शूटिंग करनी पड़ेगी, जिसके लिए उसका बंबई में रहना आवश्यक है। परन्तु कमला ने इस बात को पूरी तरह समझे बिना जल्दी से कहा, "मिस देवीबाला! इस तरह तो आपका कई हजार रुपए का नुकसान हो जाएगा। अगर आप चौबीस घंटा पहले सूचित कर देती, तो दूसरी बात थी।" परंतु देवीबाला ने इतना कहकर, "ऊंह, चंद हजार रुपए का नुकसान कौनसी बात है। यहां तो लाखों की पिक्चर का सवाल है!" टेलीफोन बंद कर दिया। और टिकट की ओर दृष्टि डालते ही कमला कमलेकर का दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा। आज उसके स्वप्न साकार हो सकते हैं। परन्तु क्या वह इतना बड़ा कदम उठा सकेगी? क्या उसमें इतनी हिम्मत है? क्या वह सचमुच···

दीवार पर लगा हुआ घंटा—टन-टन बजने लगा। एक··· दो···तीन···। दफ्तर के खाली कमरे में घंटे की खोखली और डरावनी-सी आवाज़ सुनाई पड़ रही थी। चार···पांच···। शायद उसे बुखार की हरारत हो गई है और सिर चकरा रहा है, या उस निर्णयात्मक क्षण के नशे ने उसे किंकर्तव्यविमूढ़ कर दिया है। छः···सात···आठ··· दफ्तर के कमरे की दीवारें घूमती-सी लग रही थीं। नौ···दस··· और

ऐसा लगा कि घंटे की टन-टन समाप्त होते ही पूरा घंटा घूम गया। जैसे स्वयं समय उसे शीघ्र ही निर्णय करने का आदेश दे रहा हो: "बस यही एक मौका है। अगर आज न गई, तो फिर कभी न जा सकोगी। कभी नहीं, कभी नहीं!" मन में दबी हुई इच्छाओं, उमंगों और आकांक्षाओं ने उसके सीने में हलचल मचा रखी थी, जिसके कारण उसकी अजीब हालत थी, जैसे आदमी तीव्र ज्वर में बड़बड़ाने लगता है। उसकी धमनियों में रक्त का संचार तीव्र हो उठा और जैसे उसके हृदय में पंख लगे हों।...जाने वह उसके हृदय की धड़कन थी या हवाई जहाज के पंखों की फरफराहट। और यह जहाज, जो उसे दिख रहा था, सचमुच का था या उसकी मेज पर रखा हुआ कॉन्सटेलेशन का मॉडल?

उसने अचरज से आंखें फाड़-फाड़कर देखा। लेकिन सचमुच का शानदार हवाई जहाज उसी तरह सामने मौजूद था। और कुछ क्षणों के बाद वह एक हाथ में पासपोर्ट और दूसरे में टिकट लिए उसकी सीढ़ियों पर चढ़ रही थी। अंदर नरम और आरामदेह सीटें थीं, जिनकी प्रशंसा में प्रचार-पुस्तिकाओं के पृष्ठ-के-पृष्ठ रंगे होते थे। एयर-होस्टेस ने, जो पोस्टर पर बनी हुई तसवीर की भांति सुंदर और स्मार्ट थी, मुस्कराते हुए उसका स्वागत किया। दरवाजा बंद होते ही माइक्रोफ़ोन पर उसका मधुर स्वर सुनाई पड़ा, "लेडीज़ ऐंड जेंटलमेन! कृपा कर अपने-अपने सीटबेल्ट बांध लीजिए।" जहाज़ हवा के कंधों पर ऊंचा हुआ और बंबई का चमकीला नक़्शा, जैसे काले मखमल पर हीरे जगमगा रहे हों, कहीं दूर नीचे होते-होते रात के अथाह सागर में डूब गया। इसके बाद की यात्रा का सब विवरण वही था, जो वह पेरिस जानेवाले यात्रियों को अनेक बार बता चुकी थी। क़ाहिरा पहुंचते हुए जहाज़ मिस्री पिरामिडों पर से उड़ा, जो इतनी ऊंचाई पर से रेत की लहरों पर डुबकियां खाते हुए नन्हें-मुन्ने खिलौने लग रहे थे। दोपहर को रोम के पुराने खंडहरों पर चक्कर लगाते हुए लगा, मानो वह वहां के रंगीन चित्र देख रही हो। और फिर पेरिस! उसके स्वप्नों का नगर पेरिस—

जहां वह स्वप्न में नहीं, आज सचमुच पहुंच गई थी !

"टैक्सी मादाम ?" टैक्सी-ड्राइवर ने आदर से झुकते हुए पूछा। कमला को उसकी शक्ल ऐसी जानी-पहचानी लगी, मानो किसी फिल्म या पुस्तक या स्वप्न में उसे देख चुकी हो।

"ओ एल्ले वौ मादाम ?"

"आला ओतेल।" उसने सक्षिप्त-सा उत्तर दिया। वर्षों पूर्व कालेज में सीखी हुई फ्रेंच बोलते हुए उसे बड़ा संकोच हो रहा था।

"ओतेल शातर एलेज़े।" और होटल का यह नाम भी था तो पहले उसने कहीं स्वप्न में सुना था या शायद उन होटलों की सूचियों में पढ़ा था, जिनकी मदद से वह यात्रियों को पेरिस में ठहरने के संबंध में सलाह दिया करती थी।

होटल भी सपने की भांति सुंदर निकला। संगमरमर का चिकना फ़र्श, महोगनी का कीमती फर्नीचर, सुनहरे फ्रेमों के आदम-कद शीशे, कालीन-बिछी सीढ़ियां और एक सुन्दर खिलौना-सी लिफ्ट, जो एम-केलियर कहलाती थी। और अपना कमरा देखकर तो उसकी आंखें खुली-की-खुली रह गईं। जैसे फ़िल्मों में उसने बादशाहों के कमरे देखे थे, बिलकुल वैसा ही। सुनहरे मुलम्मे का शानदार डबलबेड, जिसके चारों ओर कमख़ाब के परदे लगे थे। उसने खिड़की में से झांका। आकाश पर लालिमा छा रही थी। चायघरों की रौनक देखते ही बनती थी। ऐसे में कौन कमरे में बैठना पसंद करेगा ? कमरे से मिले स्नानगृह में हलके नीले चीनी के बाथ-टब में स्नान करके शरीर में एक नई ताजगी आ गई थी, लेकिन नरम रोएंदार तौलिए के स्पर्श का आनंद लेते हुए उसे एकदम अपनी घर की धुली साड़ी का ध्यान आ गया और वह आकाश पर उड़ते-उड़ते धरती पर आ रही। अब क्या हो ? क्या वह पेरिस की इस जादू-भरी शाम को ऐसी भद्दी साड़ी पहन सकती है ? उसने कांपते हाथों से अपना सफ़री बैग खोला और उसकी अपनी आंखों पर विश्वास न हुआ। कई अत्यन्त भड़कीली और कीमती साड़ियां और कंधों पर डालने को काली मखमली शाल वारडोब में चमचमा रही

थी। जैसे राजकुमारियों का लिबास हो। और क्या पता, उसका वेश किसी प्रकार उस राजकुमारी के वेश से बदल गया हो, जो जहाज पर उसके साथ यात्रा कर रही थी। परंतु इस समय वह इन प्रश्नों से अपना दिमाग क्यों परेशान करे! उसके लिए तो यह एक दैवी सहायता थी, ताकि वह पेरिस की उस सुंदर संध्या का आनंद लेने के लिए बाहर निकल सके; पेरिस की मस्ती-भरी हवा और रूमानी दृश्यों से हृदय और दृष्टि की प्यास बुझा सके। क्या पता, इस शाम कोई ऐसी घटना घट जाए, जो उसे जीवन-भर याद रहे! शायद वह भी आज किसीकी प्यारभरी दृष्टि का केंद्र बन सके! उसके कानों में भी प्रेम-भरे शब्दों का रस टपके और उसका हृदय प्रेम के आनंद से परिचित हो। लेकिन फिर कटु सत्य की याद ने उसे धरती पर ला पटका। उसकी शक्ल इस योग्य कहां कि कोई एक बार से दूसरी बार उसके चेहरे को नजर भर-कर देखे भी। उसने शीशे पर एक निराश दृष्टि डाली और चौंक पड़ी। कहते हैं, दर्पण झूठ नहीं बोलता। तो क्या यह सचमुच उसीका प्रति-बिंब था?—आश्चर्यजनक रूप से बदला हुआ! क्या यह पेरिस का चमत्कार था कि उसके मूड के साथ उसका रूप भी बदल गया था! शीशे में एक सांवला सुंदर चेहरा दिख रहा था। वह चेहरा किसी भी दृष्टि से असुंदर नहीं कहा जा सकता था। केवल स्वप्न में वह अपनी शक्ल ऐसी देखती थी।

होटल से उतरकर कैफ़े के सामने से गुजरते हुए उसने देखा कि कॉफ़ी और शराब पीते-पीते लोग उसे देखकर क्षण-भर को रुक गए और उसकी ओर देखते-के-देखते रह गए। एक बार उसने सुना, कोई धीरे-से कह रहा था, "एले एस्त योन प्रिंसेस।" (कोई हिंदुस्तानी राजकुमारी लगती है) और कमला ने फ्रेंच में सोचा, 'सस्त एं रेव।' (अवश्य यह सब स्वप्न है)।

और फिर न जाने कहां से, किस स्वप्न-लोक से एक अत्यंत सुंदर युवक उसके पास आया—चार्लेस बोयर से भी अधिक सुंदर ! कमला को जितनी फ्रेंच आती थी, उसकी मदद से और कुछ अपनी समझ से वह बड़ी कठिनाई से उसकी बात समझ सकी।

"क्या मैं आपका परिचय पाने का सौभाग्य प्राप्त कर सकता हूं ?"

कमला ने झिझकते हुए स्वीकारात्मक ढंग से सिर हिलाया और उसके पास बैठ गई। युवक ने कहा, "नाचीज़ को काउंट पॉल वर्दी कहते हैं।"

नया होने पर भी यह नाम कमला को सुना-सुना-सा लगा। पर उसे ज़रा भी याद नहीं था कि उसने कहां और कब सुना था।

"मैं पेरिस में आपका स्वागत करता हूं। क्या मैं आपको पेरिस की सैर कराने का गौरव प्राप्त कर सकता हूं ?" फिर उसने वेटर से कहा,"ए गार्सों !" (शैंपेन लाओ !)

और वेटर तुरंत चांदी की बाल्टी में बर्फ में लगी शैंपेन की बोतलें ले आया और कमला को याद आया कि पेरिस में बंबई की तरह मद्य-निषेध नहीं है।

"आपको कैसे मालूम हुआ कि मैं यहां आई हूं ?" उसने अपनी टूटी-फूटी लड़खड़ाती फ्रेंच में पूछा।

"मुझे तो हमेशा से मालूम था कि तुम जरूर आओगी। मैं इस दिन की न जाने कब से प्रतीक्षा कर रहा था।"

"तो आप भी मेरा...मतलब है, किसीकी प्रतीक्षा में थे ?"

"किसीकी नहीं, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। तुम्हारे आने के स्वप्न देख रहा था।"

"और मैं तुम्हारे," उसने स्वीकार किया और पहली बार अपने संकोच और शर्म पर काबू पाकर उसकी निगाहों में निगाहें डाल दीं।

"तो आओ, इस मिलन की खुशी में जाम टकराएं। जीवन के इस सबसे सुंदर स्वप्न के सत्य होने की खुशी में।"

कमला ने जिस प्रकार फिल्म में लोगों को शराब पीते देखा था,

उसी प्रकार शैंपेन का एक घूंट पिया । युवक ने उसका हाथ अपने होंठों से लगा लिया और आनंद की एक लहर उसके सारे शरीर में दौड़ गई ।

"चलो, विक्टरी-टावर तक चलें ।"

दोनों हाथ-में-हाथ डालकर चलने लगे । लाली छाए आकाश के सामने विक्टरी-टावर की भव्यता देखनेवालों के दिल पर अजीब असर पैदा कर रही थी । कमला को महसूस हो रहा था कि आज उसके सारे स्वप्न सत्य हो उठे हैं।। रूमानी पेरिस...सुंदर और नौजवान काउंट, जो कमला की दृष्टि में पेरिस के समस्त सौंदर्य और रंगीनी की मूर्ति था । और कुछ देर के बाद के अनुभव के आधार पर कमला कह सकती थी कि वह नौजवान केवल शिष्टाचार और सदाचार में ही नहीं, साहस और वीरता की दृष्टि से भी अद्वितीय था । हुआ यह कि विक्टरी टावर के निकट पहुंचने पर किसी बिगड़े-दिल नौजवान ने कमला को देखकर, बड़े भद्दे और गंदे ढंग से सीटी बजाई । यह देखते ही काउंट ने न कुछ कहा, न सुना; तुरंत 'ड्युेल' की चुनौती दी और इससे पहले कि कमला घटना को ठीक से समझ सकती, दोनों ओर से तलवारें म्यान से निकल आईं और कमला के प्रिय काउंट ने उसके अपमान का बदला लेने के लिए अपनी जान की बाज़ी लगा दी ।

आस-पास के लोग ड्युेल देखने को जमा हो गए, पर किसीने दोनों आदमियों को अलग करने की कोशिश नहीं की । और कमला !—वह तो ऐसी भौंचक्की खड़ी थी, मानो उसकी टांगें जवाब दे गई हों ।

संध्या के धुंधलके में लड़नेवालों की तलवारें बिजली की तरह कौंध रही थीं । फ़िल्मी एक्टरों की भांति दोनों कभी पैंतरे बदलते, कभी उछल-उछलकर एक-दूसरे पर वार करते, कभी झुककर दूसरे का वार ख़ाली देते । लेकिन एक बार काउंट ने तलवार का ऐसा भरपूर हाथ मारा कि प्रतिद्वंद्वी की तलवार उछलकर दूर जा पड़ी और काउंट की तलवार की नोक उसके सीने को छेद गई और वह कटे हुए पेड़ की भांति धरती पर गिर पड़ा । काउंट की तलवार उसके ख़ून से लाल थी ।

काउंट कमला की ओर घूमकर झुका और फिर खड़ा होकर बोला, "यह सब तुम्हारी खातिर है, मेरी दिलरुबा !"

ठीक उसी समय पुलिस की सीटी की आवाज सुनाई पड़ी।

"जंदारम !" काउट के मुह से अनायास निकला और कुछ ही क्षणों में वह कमला को भूलकर, जिसके लिए उसने कानून के खिलाफ डुयेल लड़कर एक आदमी का खून कर दिया था, पुलिस से बचने के लिए छलांगें मारता हुआ एक गली में घुस गया। कमला भी पीछे-पीछे भागी, लेकिन उसको पकड़ नहीं सकी। पतली-पतली पुरानी पथरीली गलियों में वह उसका पीछा करती रही। यहा तक कि उसकी सास फूल गई। एक बार तो वह तेजी से भागते हुए काउंट के बिलकुल निकट पहुच गई। लेकिन जब वह सास लेने को रुकी, तो वह मोड पर से भागता हुआ हमेशा के लिए दृष्टि से ओझल हो गया।

लेकिन पुलिस की सीटी की आवाज अब भी कमला का पीछा कर रही थी और वह उसी तरह बदहवास-सी भाग रही थी। आखिर वह एक बद गली में फस गई और घबराकर एक दरवाजे में घुसी और तेजी से जीने पर चढने लगी, ताकि पुलिस से बच सके कि एकदम उसका पाव ऐसा फिसला कि वह सिर के बल लुढ़कती हुई जीने से नीचे आ रही और आंखों के सामने अंधेरा छा गया।

और जब अंधेरी रात खतम हो गई तब उसने देखा कि वह अपने कमरे में पलग पर पड़ी है और उसके कमरे में साथ रहनेवाली सखी उषा ने उसे बताया कि वह सीढ़ियों पर से गिर पड़ी थी और सिर में सख्त चोट आने के कारण दो दिन, दो रात तक बिलकुल बेहोश रही। ऊषा ने, जो मेडिकल कॉलिज के तीसरे वर्ष में, पढ़ रही थी, यह भी बताया कि मूर्छित अवस्था में वह अजीब ऊटपटाग बातें कर रही थी जिनका न सिर था, न पैर। कभी पेरिस की चर्चा, कभी किसी काउंट की।

"और जानती हो, तुम क्या कह रही थी ? मैं तो उस काउट को पकड़कर शीशी में बद करके आफिस में रखना चाहती हूं। इससे

हमारी एजेंसी की बड़ी अच्छी पब्लिसिटी होगी। मेरी राय मानो, तो तुम किसी अच्छे साइकिएट्रिस्ट को दिखाओ।"

"और मेरे कपड़े कैसे थे ? क्या कुछ सामान भी साथ था ?" कमला ने क्षीण स्वर में पूछा। उस पर अभी तक उस दीर्घ स्वप्न की थकावट छाई थी।

"कपड़े तो तुम्हारे वही रोज के पहननेवाले थे। लेकिन हाथ में पेरिस का टिकट था, जिसे तुमने कसकर पकड़ रखा था।"

कई दिन के बाद जब कमला दफ़्तर जाने योग्य हुई, तो वहां पहुंचकर उसने सबसे पहले हवाई जहाज की कंपनी को टेलीफ़ोन किया, "मैं हमसफ़र लिमिटेड से बोल रही हूं। मुझे बहुत अफ़सोस है कि मैं बीमारी के कारण आपको समय पर सूचित न कर सकी। हमने कमला कमतेकर के नाम पर पेरिस का जो वापसी टिकट खरीदा था, उसे कैंसिल कर दीजिए।"

उत्तर सुनकर उसे अपने कानों पर विश्वास न हुआ और उसने चीखकर पूछा, "क्या ?…ज़रा फिर से कहिए !"

उधर से कहा गया, "यही कि जिस टिकट को आप कैंसिल करने को कह रही हैं, वह तो कभी का इस्तेमाल हो चुका। मिस कमला कमतेकर पेरिस जाकर वापस भी आ चुकी हैं। हां, यह बात ज़रूर अजीब है कि सिर्फ़ एक शाम वहां ठहरकर वापस आ गई। अजब सनकी निकलीं !"

यह सुनकर कमला अजीब उलझन में पड़ गई। उसके साथ जो कुछ बीती थी, वह स्वप्न था या सत्य ? लेकिन कुछ दिन बाद अख़बारों के फ़िल्मी-कॉलम में एक समाचार पढ़कर यह गुत्थी भी हल हो गई। समाचार यह थ :

"प्रसिद्ध फ़िल्म स्टार देवीबाला नाम बदलकर पेरिस पहुंचीं। लेकिन स्टूडियो के अत्यधिक आवश्यक कार्य के कारण उन्हें एक ही शाम के बाद लौट आना पड़ा।"

अवध की शाम

उसने कहा, "अव्वालसाहब, विश्वास कीजिए, मैंने ढाई वर्ष से चक्खी भी नहीं है। पर ख़ैर, आज आपकी ख़ातिर..." और बैरे को आवाज देकर बुलाया।

"एक बड़ा पेग ले आओ।" हां, हां, वही अंग्रेजी ह्विस्की का।... और क्या देशी ?" और मुझे संबोधित कर कहा, "और आप क्या पिएंगे ?"

"लेमन स्क्वाश।"

"लाहौल विलाकूवत ! आप तो बिलकुल जाहिदे-खुश्क निकले ! ख़ैर, आपकी मरज़ी !" और फिर बैरे को हुक्म देने के बाद, सिगरेट सुलगाते हुए कहा, "आप नहीं पीते, अच्छा ही करते हैं। एक बार आदत पड़ जाए तो 'छुटती नहीं है मुंह से यह काफिर लगी हुई।' मेरा ही जिगर था कि दस बरस पीने के बाद एकदम छोड़ दी। पूरे ढाई साल हो गए।"

बैरे ने गिलास सामने लाकर रखा, और सोडा डालने लगा।

"बस-बस ! सोडा नहीं चाहिए। जाओ तुम !" और फिर घूंट लेकर कहा, "हां, तो मैं क्या कह रहा था ? ओह्, ख़ूब याद आया। ढाई बरस बीत गए, और एक घूंट भी नहीं चक्खा, नॉट टच्ड ए सिंगल ड्राप ! माफ़ कीजिएगा, बोल-चाल में अंग्रेजी मुहावरे इस्तेमाल करने की बुरी आदत पड़ गई है। बात यह है कि मैं ज़रा

इंगलिश स्कूल का पढ़ा हुआ हूं।"

उसके एक हाथ में ह्लिस्की का गिलास था, दूसरे में ब्लैक ऐंड व्हाइट का सिगरेट। और मैंने देखा कि दोनों हाथ नशे के कारण हलके-हलके कांप रहे हैं, और कांपता हुआ हाथ मुंह से गिलास हटाता है, तो दूसरा हाथ सिगरेट को मुंह की ओर ले जाता है। और ऐसा लग रहा था कि जैसे तरल अग्नि गले में उतरती-उतरती धुआं बनती जा रही हो। वह सिगरेट के धुएं इस प्रकार खेल रहा था, जैसे कोई सरकस का मदारी लोहे के छल्लों या रस्सी के गोल घेरे से निकलता है। कभी नाक से धुएं की पिचकारी छूटती, कभी मुंह को गोल करके धुएं के छल्ले छोड़े जाते। और जब ये छल्ले एक-दूसरे से मिलकर एक लंबी धुएं की जंजीर बन जाते, तो उसे देखकर वह अपने कमाल पर आप-ही-आप गर्व करता-सा मुस्कराता।

वह लखनऊ के एक बड़े ताल्लुक़ेदार का मंझला बेटा था और उससे मेरी मुलाक़ात उसी दिन हुई थी। मिलते ही उसने कहा था, "आप'''आप ही हैं अब्बाससाहब, जिन्होंने वे किताबें लिखी हैं! मुझे तो बड़ी मुद्दत से आपकी तलाश थी। आज मैं आपको नहीं छोड़ूंगा। मुझे आपसे बहुत-सी बातें करनी हैं।" और फिर मुझे कमरे के दूसरे कोने में ले जाकर बोला, "भाईसाहब सुनेंगे, तो मेरा मज़ाक उड़ाएंगे। दरअसल मुझे चंद साहित्यिक मामलों में आपकी सलाह दरकार है। और आपके सिवा मुझे कोई दूसरा नज़र नहीं आता, जो मुझे सही रास्ते पर लगा सके। मेरे भावी जीवन का दारमदार आप ही की सलाह पर है।"

उसके बहनोई का भाई मेरा दोस्त है, इसलिए इन्कार करना कठिन हो गया और मैंने उसकी दावत स्वीकार कर ली कि शाम एक साथ बिताएंगे। मैंने सोचा, "आज इस नौजवान ताल्लुक़ेदार की संगत में यह भी देख लिया जाए कि अवध की शाम कितनी रंगीन है।"

और अवध की शाम शुरू हुई 'चीना बार' से।

हजरतगंज में रोशनियां जगमगा रही थीं। रेशमी साड़ियां झिलमिला रही थीं। सुंदर मुखड़ों की मानो नुमायश हो रही थी। काफी-हाउस में विद्यार्थियों, कवियों, पत्रकारों का मजमा था। एक सिनेमा के सामने खेल-कूद के शौकीन ओलंपिक्स का फिल्म देखने के लिए बेचैन थे। एक दूसरे सिनेमा में एक रूसी फिल्म 'ट्रायफ ग्रॉफ यूथ' दिखाया जा रहा था। युगल जोड़िया नुक्ताचीन निगाहों से बचकर, मेफेयर रेस्तरां में ग्रानंद के कुछ क्षण बिताने जा रही थीं। अमीनाबाद में कंधे-से-कंधा छिलता था। दीवाली की रंग-बिरंगी मिठाइयों से हलवाइयों की दूकानें सजी हुई थीं। बच्चे खिलौनों की दूकानों पर भीड़ लगाए थे। लेकिन मेरे नए दोस्त की कृपा से मेरी अवध की शाम की शुरूआत एक तंग और अंधेरे ह्विस्की और बियर की गंध में बसे हुए बार में हुई।

"अब्बाससाहब, एक बात बताइए।"

"कहिए।"

"मेरे चेहरे को गौर से देखकर अंदाजा लगाइए कि मेरी उम्र कितनी है?"

मैंने ध्यान से देखा। वह अच्छा-खासा सुंदर जवान था। गोरा रंग, फिल्म-स्टारों जैसी पतली मूछें, घुंघराले बाल, अच्छा नख-शिख, लेकिन आंखों के गिर्द हलके काले धब्बे, दाहिने हाथ की दो उंगलियां सिगरेट के धुएं से सियाही लिए हुए पीली। मैंने ऐसे ही अललटप जवाब दिया, "कोई अट्ठाईस बरस।"

"देखा, आप भी धोखा खा गए न! मेरी उम्र सिर्फ चौबीस साल है। पिछले साल ही तो बी० ए० का इम्तहान दिया है। हमारे इम्तहान का भी मजब किस्सा है, जनाब। इकोनॉमिक्स में हम फेल, पर अंग्रेजी में फर्स्ट! जिस प्रोफेसर के पास अंग्रेजी का पर्चा था, वह शुद्ध अंग्रेज। मेरी कापी देखकर उस अंग्रेज ने वाइस-चांसलर से कहा, 'मैं इस लड़के का लिखा हुआ मजमून विलायत के किसी मैगजीन में छपने के लिए भेजना चाहता हूं, जिससे कि वहां के

...लड़के कहते कि हिंदुस्तानी विद्यार्थी किसी अच्छी अंग्रेज़ी लिख सकते हैं।' सब सोचते कि इस नाचीज़ को इतनी अच्छी अंग्रेज़ी लिखनी कहां से आ गई! तो आप यह देखते हैं, अब्बाससाहब, कि मैं बचपन से ही पढ़ा हुआ हूं न।"

पहला पेग ख़त्म हो चुका था। नौकर ने इशारा समझा, दूसरा पेग गिलास में डाला और पास ही सोडा की बोतल रखकर चला गया।

दूसरे पेग का पहला घूंट चढ़ाते हुए उसने कहा, "देखा आपने, पूछा भी नहीं और पेग डाल गया। हालांकि मैं सिर्फ़ एक ही पेग पीने के इरादे से आया था, और वह भी आपकी ख़ातिर। दरअसल मैंने तो पीना छोड़ ही दिया है। बुरी बला है। अच्छे-ख़ासे आदमी को पागल बना देती है। डोरीन कहा करती थी, 'नवाब डालिंग!...' स्कूल में सब मुझे नवाब-नवाब ही कहते थे...। हां, तो डोरीन कहा करती, 'नवाब डालिंग, तुम पहला पेग पीते हो, तो बड़े सुंदर दिखाई पड़ते हो। और जब दूसरा पेग पी लेते हो, तो बड़े ख़ूंख्वार नज़र आते हो। और जब तीसरा पेग पी लेते हो, तो बिलकुल उल्लू मालूम होते हो। इसलिए बस तुम एक ही पेग पिया करो।' अजीब लड़की थी वह भी। मुझे कभी 'फ़ेयरी प्रिंस'—आप मतलब समझे न?—परियों का राजकुमार भी कहा करती थी। और मैं उसे कहता, 'माई स्वीट सिंड्रिला।' वह ज़रा ग़रीब लड़की थी, एक एंग्लो-इंडियन ड्राइवर की बेटी। नैनीताल में हमारे स्कूल के पास ही लड़कियों का कॉनवेंट था, वहां वह पढ़ती थी। मैं उस वक़्त कोई चौदह या पंद्रह वर्ष का था, और वह शायद सोलह वर्ष की। एक रात को डांस में मुलाकात हो गई। न जाने क्यों, पहली मुलाक़ात में ही वह मेरी तरफ़ खिंची चली आई। न जाने मुझमें क्या आकर्षण-शक्ति थी? अब्बाससाहब, ईमान से बताइएगा, मुझमें क्या ऐसा कोई आकर्षण है कि लड़कियां

हमेशा खिची ही बनी आएं ?"

मैंने कहा, "शायद आपके रुपए में कोई आकर्षण हो ।"

"आप सच कहते हैं । ये एंग्लो-इंडियन लड़कियां होती ही हैं पैसे की लोभी । लेकिन आप विश्वास कीजिए, डोरीन ऐसी नहीं थी । उसे मुझसे सच्चा प्रेम था ।"

"और आपको ?"

"मैं तो बच्चा था बिलकुल । प्रेम-व्रेम जानता ही न था । खैर, अब उस बेचारी का क्या जिक्र ? तीन साल हुए, उसकी शादी एक पुलिस सार्जेंट से हो गई । पर अब भी हर साल क्रिसमस कार्ड जरूर भेजती है । और जानते है, उस पर क्या लिखा होता है ? लिखा होता है—'टू माई फेयरी प्रिंस' ।"

दूसरा पेग कभी का खत्म हो चुका था । उसने एक नजर खाली गिलास पर डाली और फिर चिल्लाया, "ब्वाय ! ब्वाय !"

जब बैरा भागा हुआ आया, तो उसे डांटा, "अंधे हो ? देखते नहीं, गिलास कबसे खाली पड़ा हुआ है ?"

बैरा भागकर ह्विस्की की बोतल लाया । एक पेग उडेला । सोडा डालने लगा, तो "बस, बस" कह कर रोक दिया गया ।

"अब्बाससाहब, अच्छा करते हैं आप कि नहीं पीते । मगर कभी पीने-पिलाने का शौक करें, तो एक बात याद रखिएगा कि अगर आप चाहते हैं कि सुरूर हो, पर नशा न चढ़े और अगले दिन 'हैंग ओवर' न हो, तो ह्विस्की में ज्यादा सोडा कभी न डालिएगा । नशा दरअसल ह्विस्की से नहीं, इस कमबख्त सोडे से होता है । यह नुसखा, खुदा बख्शे, हमारे चचा जान मरहूम ने बताया था । पहली बार शराब भी उन्होंने ही पिलाई । मैं उस वक्त बारह बरस का था । शराब का नाम सुना था, पर कभी चक्खी न थी । चचा जान क़िबला यानी नवाब साहब रकरामपुर—आपने नाम जरूर सुना होगा—हां, तो उनके यहां जलसा था । दर्जनों तवायफ़ें बुलवाई गई थीं । सारे महल में चमा-चौकड़ी मची हुई थी । मुन्नी तवायफ़ उन दिनों बड़ी मशहूर थी । वह

नवाबसाहब के सामने जाम रखे थे और वे [illegible] आगे-आगे मे [illegible] जाम [illegible] न रही थीं। सब लोग छिपकर तमाशा देख रहे थे। लेकिन यह [illegible] मुन्नी बाई [illegible] पेशवाज में ऐसी [illegible] कि मैं [illegible] में से [illegible] आ गया, ताकि उसे नाचता हुआ [illegible] देख सकूं। शामत जो आई, तो नवाबसाहब की नजर मुझ पर पड़ गई। वहीं से आवाज दी, 'मुन्नन बेटा! यहां आओ।' अब तक वह मुझे मुन्नन ही कहते हैं। हां, तो उन्होंने आवाज दी, तो मुझे जाना ही पड़ा। दिल-ही-दिल में डरता-कांपता उनके पास पहुंचा, तो जाम मेरी तरफ़ बढ़ाकर बोले, 'लो, पियो!' मेरी झिझक देखकर सब हंस पड़े। मुन्नी भी गाना बंद करके हंसने लगी। बोली, 'नवाबसाहब, इजाजत हो, तो छोटे मियां को मैं अपने हाथ से पिलाऊं?' नवाबसाहब ने इशारा किया, तो मुन्नी ने अपने हाथों से एक पेग उड़ेला। उसमें सोडा उंडेल ही रही थी कि नवाबसाहब ने रोक दिया, 'बस-बस, ज्यादा सोडे से नशा चढ़ जाता है। ले-ले, मुन्नन! बहादुर है तू! अल्लाह का नाम लेकर पी जा। और यह बात गिरह में बांध ले कि जितनी ह्विस्की हो, सोडा उससे ज्यादा न हो, तो कभी नशा न होगा।' और मुन्नी ने मेरी तरफ़ जाम बढ़ाकर बड़े प्यार से कहा, 'लें, बेटा, पहला जाम मुबारक हो!' मैं चारों तरफ़ से घिरा हुआ था। अब तो कोई चारा ही नहीं था। आंख बंद करके गट-गट पी गया।"

"फिर क्या हुआ?" मैंने पूछा।

कुछ क्षणों के लिए वह चुप रहा। कोई जवाब न दिया। पर उसके मुंह से सिगरेट के धुएं से छल्ले निकलते रहे और एक-दूसरे से मिलकर एक जंजीर-सी बनाते रहे, और वह चुपचाप बैठा ऐसे घूरता रहा, मानो वह उस धुएं की जंजीर में बंधा हुआ हो और उससे छुटकारा पाना उसके लिए असंभव हो।

सिगरेट को ऐश-ट्रे में डालकर, जहां पहले ही अनगिनत सिगरेटों की लाशें पड़ी पानी में गल रही थीं, वह दूसरा सिगरेट जलाना भूल

गया और उसकी नजर गिलास की तरफ भी न गई, जो खाली रखा हुआ चौथे पेग की राह देख रहा था। धुएं की जंजीर टूटकर एक धुंधला-सा गुबार कमरे में छा गया और उसकी आवाज जैसे उस धुंध की तह में से आई, "अब्बाससाहब, यह सब सुनकर आप जरूर मुझसे, मेरे खानदान से बल्कि तमाम ताल्लुकेदारी निजाम से नफरत कर रहे होंगे।"

मैं कहना चाहता था कि रोगियों से कोई नफरत नहीं किया करता, चाहे वे कैसे भी घृणित रोग में ग्रस्त हों, विशेषकर ऐसे रोगियों से जो मरने के करीब हों। पर वह बोलता गया।

"और सचमुच हम हैं भी नफरत के काबिल। आखिर हमें क्या हक है जिंदा रहने का ? हम समाज की जोंकें हैं, जोंकें। हम खून चूसते हैं। मैंने खुद अपनी रियासत में अपनी आंखों से देखा है कि ताल्लुकेदार कितने जुल्म करते हैं किसानों पर। मैं पूछता हूं, हमारी ऐयाशियों के लिए कहां से रुपया आता है ? हमारे संगमरमर के महलों के लिए, हमारे बढ़िया कपड़ों के लिए, नाच-रंग, तवायफों, शराब···"

प्रश्न चिह्न उसके होंठों पर बना-का-बना रह गया, जैसे ही उस की नजर गिलास पर पड़ी, जो खाली था और कब से चौथे पेग की राह देख रहा था।

"ब्वाय !" मारे बार में उसका उच्च स्वर गूंज गया।

एक नया सिगरेट जलाकर धुएं की जंजीर को अपने गिर्द फैलाते हुए वह बोला, "अब्बाससाहब, इस नापाक वातावरण से आप ही मुझे निकाल सकते हैं, सिर्फ आप। मैं घर-बार, ताल्लुकेदारी, जमींदारी, सब-कुछ छोड़कर बंबई आना चाहता हूं और जर्नलिज्म से रोजी कमाना चाहता हूं। न जाने क्यों, मैं समझता हूं कि मुझमें एक अच्छा जर्नलिस्ट बनने के 'जर्म्स' मौजूद हैं। आप इसे शायद शेखी या अपने

मुंह मियां मिट्ठू बनना नहीं, लेकिन मेरा खयाल है कि कम-से-कम यू० पी० में बहुत थोड़े लोग हैं, जो मुझसे अच्छी अंग्रेजी लिख सकते हैं। 'पायनियर' तो आप जरूर पढ़ते होंगे ?"

मैंने कहा, " 'पायनियर' बंबई में नहीं पहुंचता।"

उसने चौथे पेग का दूसरा घूंट पीते हुए कहा, "तभी तो आप मेरा नाम न सुन सके, वर्ना तो सन पैंतालीस-छियालीस में कोई दिन नहीं छूटता था, जब मेरा आर्टिकल 'पायनियर' में न छपता हो। एडीटर के नाम खत होते हैं न, बस उसी कालम में रोज मेरा आर्टिकल भरा रहता था। केलीसाहब—आप तो जानते होंगे—'पायनियर' के एडीटर थे पार साल तक। बड़ा शरीफ़ अंग्रेज था, साहब।···हां, तो केलीसाहब बड़ी तारीफ़ करते थे मेरी लिखाई की। कहते थे, बड़ा मंजा हुआ स्टाइल है तुम्हारा।' बात यह है, अब्बाससाहब, कि अंग्रेजी में जरा अच्छी लिख लेता हूं। इंगलिश स्कूल का पढ़ा हुआ हूं न!"

मैंने पूछा, "आम तौर से किन-किन विषयों पर खत···मेरा मतलब है, मजमून लिखते थे आप ?"

"एक हो तो बताऊं। चीन, जापान, पेलेस्टाइन, लीग आफ़ नेशंज, जमींदारी-बिल, शरीअत बिल, हिंदी-उर्दू-हिंदुस्तानी, ऐटम बम—कोई भी सब्जेक्ट दे दीजिए, चार-पांच घंटे में मजमून तैयार ले लीजिए। मैं आपको अपने आर्टिकल्स की फ़ाइल दिखाऊंगा। मुझे यक़ीन है कि आप जरूर पसंद करेंगे।"

मैंने कहा, "मैं बड़े शौक़ से आपके मजमून पढ़ूंगा।"

"मगर, अब्बाससाहब, एक बात है। उस जमाने में मैं बड़ा पक्का मुस्लिम लीगी था। इसलिए उन आर्टिकल्स के सियासी नुक़्ते-नजर को आप पसंद न करेंगे। लेकिन जबान और स्टाइल की दाद जरूर देंगे। मैंने खुद लीग-वीग को छोड़-छाड़ दिया है। पाकिस्तान भी कुछ हफ़्तों के लिए गया था। भाईसाहब कोई बिजनेस शुरू करना चाहते थे। मगर हमें कुछ जंचा नहीं, सो वापस चला आया। पर सच पूछिए, तो मेरे खयालात में सबसे बड़ा इनक़लाब महात्मा गांधी की क़ुरबानी से

पाया है । जिस वक़्त उनके क़त्ल की ख़बर आई है, मैं बिलकुल सन्न हो गया । ऐसा मालूम हुआ, जैसे मेरे साम्प्रदायिक विचारों का महल भड़ाड़ा-धम करके गिर पड़ा हो । क्या शानदार मौत भी थी उनकी, उनकी ज़िंदगी ही की तरह ! अफ़सोस कि ज़िंदगी में मैंने उनकी क़द्र नहीं की । उस दिन से गांधीजी की लिखी हुई किताबें पढ़नी शुरू कर दीं । जानते हैं, वे किताबें पढ़कर मैं किस नतीजे पर पहुंचा ?"

इस बीच न जाने किस समय बैरा पांचवां पेग गिलास में डाल गया था । ह्विस्की में चंद बूंदें सोडा की डालने के लिए एक क्षण के लिए वह रुका । एक सिगरेट से दूसरा सिगरेट सुलगाया और अपना बयान जारी रखा ।

"गांधीजी की तहरीरें पढ़ने के बाद मुझे ऐसा मालूम हुआ, जैसे मेरे अंधेरे दिमाग़ में एकदम रोशनी हो गई हो । मैंने सोचा कि इस दुनिया में बहुत-सी मनहूस ताक़तें हैं, साम्राज्य है, पूंजीवाद है, जुल्म और हिंसा है, जंग और ऐटम-बम है, मगर एक ऐसी ताक़त भी है, जो इन सब पर भारी है । बताइए वह कौनसी ताक़त है ?"

मैंने कहा, "शायद आपका मतलब जनता के एके या इत्तहाद से है ।"

"नहीं, नहीं । जिस अटल ताक़त की तरफ़ मैं इशारा कर रहा हूं, वह मुहब्बत की ताक़त है । गांधीजी ने मरकर साबित कर दिया कि सिर्फ़ मुहब्बत ही नफ़रत और हिंसा, साम्राज्य और फ़िरक़ापरस्ती की ताक़तों को जीत सकती है । उस दिन से अगर मैं किसी 'इज़्म' का क़ायल हूं, तो वह 'मुहब्बतइज़्म' है ।" और फिर एकाएक मेरी तरफ़ झुककर, "अय्यासमाहब एक बात बताइए ।"

"कहिए ?"

"आपने कभी मुहब्बत की है ?"

मैंने स्वीकार किया कि मुझसे यह अपराध हो चुका है ।

उसने छठे पेग में बराबर की मात्रा में सोडा मिलाते हुए कहा, "छोड़िए, साहब ! आप जैसे प्रोग्रेसिव-मुस्क ने क्या मुहब्बत की होगी ?

मुहब्बत हमने भी की है ।"

मैंने कहा, "इसमें क्या शक है ।"

"पहले तो, साहब, आप हमारी पहली मुहब्बत की कहानी सुनिए। यह नौशीनवाली नहीं । वह तो तो ही बच्चों का खेल था । यह जुबैदा-वाली मुहब्बत तो कुछ और ही खौफ़नाक चीज़ थी । साहब, वह मामला यों हुआ कि मैं जाड़े के मौसम में चंद हफ़्ते के लिए नई देहली में ठहरा हुआ था, भाईसाहब के एक दोस्त के यहां । उनकी एक बड़ी क़ालीनों की दूकान थी । हमारे यहां क़ालीन उन्हींके यहां से आते थे । इसी तरह दोस्ती भी हो गई थी । उनकी दूकान कनॉट प्लेस में थी, मंजूर एंड कंपनी । आपने कोई देखा होगा । अब तो ख़ैर, पाकिस्तान चले गए हैं । यह सन चवालीस की बात है । दूकान के ऊपर ही उनका फ्लैट था, जिसमें एक कमरा मुझे दिया गया था । चूंकि ऊपर उनकी वाइफ़ और बेटी रहा करती थीं, इसलिए मैं ज्यादातर वक़्त नीचे दूकान में ही गुजारा करता था । एक दिन मंजूरसाहब कहीं बाहर गए हुए थे । मैं अकेला ही दूकान पर बैठा था । क्या देखता हूं कि ऊपर से मेहतरानी चली आ रही है । सीधे मेरे पास आकर कहने लगी, 'मियां आपसे कुछ कहना है ।' पास दो-चार आदमी और भी बैठे थे । वे हंसने लगे । मैं भी खिसिया गया । आप ही सोचिए । आप मेरी जगह होते, तो क्या करते ? ख़ैर मैं वहां से हटकर उसे अलग ले गया, तो वह कहने लगी, 'मियां, छोटी साहबजादी पर तरस खाइए, नहीं तो वह जान दे देंगी ।' मैंने कहा, 'मैंने क्या जुल्म किया है ? मैंने तो उनकी शक्ल भी नहीं देखी ।' वह बोली, 'यह उनसे पूछिएगा । मेहरबानी करके ऊपर अपने कमरे में तशरीफ़ ले चलिए । उनकी मां इस वक़्त बाहर हैं ।' मरता क्या न करता ? ऊपर अपने कमरे में पहुंचा, तो वह मौजूद । शायद सोलह-सत्रह बरस की होगी । रंगत, जैसे मैदा और गुलाब, नरगिसी आंखें । देखते ही क़दमों में गिर पड़ी । बोली, 'शादी न कीजिए, लौंडी बनाकर रख लीजिए, मगर अपने से जुदा न कीजिए ।' यह सुनकर मैं अचंभे में पड़ गया । सोचा, उसके बाप ने देख

लिया, तो खैर नहीं। वह रोए जा रही थी। बड़ी मुश्किल से समझा-बुझाकर उसे चुप कराया। उस दिन से तो साहब, जब मौका मिलता, वह मेरे कमरे में आ जाती। एक दिन कहने लगी, 'मुझे भगाकर ले चलो।' मैंने कहा, 'मुझमें तो हिम्मत नहीं है। आप ही मुझे भगा ले चलें, तो काम बने।'...अब्बाससाहब, अब आप बताइए, मेरी सूरत में आखिर ऐसा क्या जादू है कि वह इस तरह लट्टू हो गई ?"

सवाल का जवाब देने की जरूरत न थी। मालवा पेग सामने मौजूद था। उसने एक घूट पीकर बात जारी रखी। "मगर कसम ले लीजिए, जो मैंने उसे बुरी निगाह से देखा भी हो, हालांकि वह थी बड़ी खूबसूरत। जुबैदा नाम था, पर उसे जैबो-जैबो कहते थे। बात यह है कि मैं उसके बाप से डरता था। एक तो पंजाबी, दूसरे बड़े भाई का दोस्त, और तीसरा यह कि बड़ा चार सौ बीस मशहूर था। कोई दस दिन के बाद मेरे कमरे में आई, तो मुझे कमीज उतारकर दिखाया कि कमर पर नीले निशान और घाव पड़े हुए हैं, जहां-जहां उसके बाप ने कोड़ों से मारा था।...अब आप ही बताइए, मैं क्या करता ?"

"उससे शादी।"

"तोबा कीजिए साहब! उसके बाप की सूरत से मैं डरता था। जब मैंने देखा कि उसने अपनी बेटी की चमड़ी उधेड़ दी है, तो मैंने सोचा कि मेरे पीछे पड़ गया, तो जाने क्या हाल बनाएगा। सो मैं तो उसी रात को सामान वहीं छोड़कर, रेल में सवार होकर लखनऊ आ गया। वह दिन और आज का दिन, देहली का रुख नहीं किया। अब्बास-साहब, अब कहिए, इस वाकये को अफसाना बनाकर लिख दूं, तो कैसा रहे? मेरे ख्याल में हिंदुस्तान में आज तक इतनी जोरदार कहानी न लिखी गई होगी और यही एक वाकया थोड़ा ही है। अपनी तो सारी

ज़िंदगी ही एक कहानी रही है। आपको सुनाने बैठूं, तो सारी रात खत्म हो जाए। मगर अब दिन खड़ा हो गया है। मुहब्बत भी करके देख ली और ऐयाशी भी कुछ कम नहीं की। आपसे झूठ क्यों बोलूं, जो कुछ ज़मींदार-ताल्लुक़ेदार करते हैं, सभी कुछ किया है। मगर ढाई साल हुए, दिल कुछ इस तरह टूटा कि दुनिया से बेज़ार हो गया। उस दिन से शराब तक छोड़ दी। बस आज ही आपकी खातिर दो-एक पेग पी लिए हैं।"

उसके सामने आठवां पेग रखा था। उसने गिलास उठाया, उसमें सोडा मिलाया, चखा और फिर रख दिया। एक नया सिगरेट जलाया। धुएं की जंजीर फिर उसके गिर्द फैल गई। कुछ क्षणों के मौन के बाद उसने फिर बोलना शुरू किया और किसी फ़िल्मी संवाद को दोहराते हुए कहा, "मैं समझता हूं कि दिल पर चोट लगने के बाद इन्सान इन्सान बनता है। इसके बग़ैर राइटर तो बन ही नहीं सकता।…जब से शकुंतला से मेरी मुहब्बत का रिश्ता टूटा है, पूछिए मत कि मेरे दिल पर क्या गुज़री है। पर उस दिन से हाल यह हो गया है कि आज ग़ज़ल दिमाग़ में आ रही है, तो कल कहानी और परसों मज़मून।…दरअसल सच्ची मुहब्बत मैंने ज़िंदगी में सिर्फ़ एक बार शकुंतला से ही की है। आपने राजकुमारी शकुंतला ऑफ़ देवनगर को तो ज़रूर देखा होगा—ताज वग़ैरा में?"

मैंने उसे बताया कि मुझे ताज वग़ैरा में जाने का मौक़ा कम ही मिलता है।

"तो तसवीर तो ज़रूर देखी होगी। रेसकोर्स, गवर्नमेंट हाउस की गार्डन पार्टी, हर जगह ही तो वह मौजूद रहती है। और 'ऑन-लुकर' वग़ैरा में उसकी तसवीरें बराबर निकलती रहती हैं। अपनी मुलाक़ात भी उससे अजीब तरह हुई। उस सीज़न में हम सब भाई-बहन मसूरी में एक कोठी लेकर ठहरे हुए थे। मसूरी की ज़िंदगी तो आप जानते ही हैं। दिन भर ताश खेलते, शाम को केबरे, रात को डिनर और डांस। आज यहां दावत है, तो कल वहां। बालरूम डांस मैं

जरा अच्छा कर लेता हूं। बचपन से मश्क की है। इंगलिश स्कूल का पढ़ा हुआ हूं, न।" बैरे को देखकर जरा रुक गया।

"अच्छा डालो," उसने कहा, "तीसरा पेग भी पी लूं।" यद्यपि बैरा उसके गिलास में नया पेग डाल रहा था।

"हां, तो अख्तामसाहब, राजकुमारी शकुंतला उन दिनों विलायत से पढ़कर नई-नई आई थी। उसके नाच की बड़ी धूम थी। एक दिन मुझे डांस करते देख लिया। बस, सहेलियों से कहने लगी, 'सारे हिंदुस्तान में कोई डांस करना जानता है, तो बस यह लड़का। यह कौन है? मुझसे मिलाओ जरा।' किसी दोस्त ने हमारी मुलाकात करा दी। बस, साहब, उस दिन से तो हमारा जोड़ ऐसा बना कि हर शाम में इकट्ठे होते। धीरे-धीरे मुहब्बत भी हो गई। शकुंतला थी भी मुहब्बत के काबिल। एक तो खूबसूरत, फिर विलायत की पढ़ी हुई। अंग्रेजी शायरी का तो बड़ा शौक था उसे। लिटरेचर लिखती थी, लिटरेचर। आप पढ़ेंगे, तो कहेंगे कि इनको छपवाना चाहिए। मैं कभी नॉवेल लिखूंगा, तो उन खतों को उसमें जरूर इस्तेमाल करूंगा। आपके ख्याल से नॉवेल कितने दिनों में लिखा जा सकता है? मेरा दावा है कि मैं दो महीनों में लिख सकता हूं। प्लॉट तो आप जानते ही हैं, बना-बनाया तैयार है। और आपकी दुआ से कलम में जोर और रवानी भी है। बस, आपकी थोड़ी-सी सलाह की जरूरत है।"

"आप कुछ नॉवलिस्टों के अच्छे नॉवेलों को पढ़ लें, तो बहुत अच्छा होगा," मैंने सलाह दी।

"वे सब तो मेरे पढ़े हुए हैं। मोपासां को तो चाट गया हूं। और सच यह है कि उस फ्रांसीसी लेखक ने औरत के कैरेक्टर को जिस तरह पेश किया है, वह उसीका हिस्सा था। रह गए हिंदुस्तानी लिखनेवाले, तो साफ बात यह है कि मैं इनमें से किसीका कायल नहीं हूं। और आपके दूसरे संग्दर वगैरा भी बस यों ही हैं। हां, आपका मैं थोड़ा कायल हूं। मगर आपके यहां गहरे वैज्ञानिक विश्लेषण की बड़ी कमी है और यह मैं पूरी कर सकता हूं। मगर मेरे तजुर्बे को आपके इल्म की

ज़िंदगी ही एक कहानी रही है। आपको सुनाने बैठूं, तो सारी रात खत्म हो जाए। मगर अब दिल गट्टा हो गया है। मुहब्बत भी करके देख ली और ऐयाशी भी कुछ कम नहीं की। आपसे झूठ क्यों बोलूं, जो कुछ जमींदार-ताल्लुक़ेदार करते हैं, सभी कुछ किया है। मगर ढाई साल हुए, दिल कुछ इस तरह टूटा कि दुनिया से बेज़ार हो गया। उस दिन से शराब तक छोड़ दी। बस आज ही आपकी ख़ातिर दो-एक पेग पी लिए हैं।"

उसके सामने आठवां पेग रखा था। उसने गिलास उठाया, उसमें सोडा मिलाया, चखा और फिर रख दिया। एक नया सिगरेट जलाया। धुएं की ज़ंजीर फिर उसके गिर्द फैल गई। कुछ क्षणों के मौन के बाद उसने फिर बोलना शुरू किया और किसी फ़िल्मी संवाद को दोहराते हुए कहा, "मैं समझता हूं कि दिल पर चोट लगने के बाद इन्सान इन्सान बनता है। इसके बग़ैर राइटर तो बन ही नहीं सकता।...जब से शकुंतला से मेरी मुहब्बत का रिश्ता टूटा है, पूछिए मत कि मेरे दिल पर क्या गुज़री है। पर उस दिन से हाल यह हो गया है कि आज ग़ज़ल दिमाग़ में आ रही है, तो कल कहानी और परसों मज़मून।...दरअसल सच्ची मुहब्बत मैंने ज़िंदगी में सिर्फ़ एक बार शकुंतला से ही की है। आपने राजकुमारी शकुंतला ऑफ़ देवनगर को तो ज़रूर देखा होगा—ताज वग़ैरा में ?"

मैंने उसे बताया कि मुझे ताज वग़ैरा में जाने का मौका कम ही मिलता है।

"तो तसवीर तो ज़रूर देखी होगी। रेसकोर्स, गवर्नमेंट हाउस की गार्डन पार्टी, हर जगह ही तो वह मौजूद रहती है। और 'ऑन-लुकर' वग़ैरा में उसकी तसवीरें बराबर निकलती रहती हैं। अपनी मुलाक़ात भी उससे अजीब तरह हुई। उस सीज़न में हम सब भाई-बहन मसूरी में एक कोठी लेकर ठहरे हुए थे। मसूरी की ज़िंदगी तो आप जानते ही हैं। दिन भर ताश खेलते, शाम को केबरे, रात को डिनर और डांस। आज यहां दावत है, तो कल वहां। बालरूम डांस में

ग्रा अच्छा कर लेता हूं। बचपन से मश्क की है। इंगलिश स्कूल का पढ़ा हुआ हूं, न।" बैरे को देखकर जरा रुक गया।

"अच्छा डालो," उसने कहा, "तीसरा पेग भी पी लूं।" यद्यपि बैरा उसके गिलास में नया पेग डाल रहा था।

"हां, तो अब्बासमसाहब, राजकुमारी शकुंतला उन दिनों विलायत से पढ़कर नई-नई आई थी। उसके नाच की बड़ी धूम थी। एक दिन मुझे डांस करते देख लिया। बस, सहेलियों से कहने लगी, 'सारे हिंदुस्तान में कोई डांस करना जानता है, तो बस यह लड़का। यह कौन है? मुझसे मिलाओ जरा।' किसी दोस्त ने हमारी मुलाकात करा दी। बस, साहब, उस दिन से तो हमारा जोड़ ऐसा बना कि हर डांस में इकट्ठे होते। धीरे-धीरे मुहब्बत भी हो गई। शकुंतला थी भी मुहब्बत के काबिल। एक तो खूबसूरत, फिर विलायत की पढ़ी हुई। अंग्रेजी शायरी का तो बड़ा शौक था उसे। लिटरेचर लिखती थी, लिटरेचर। आप पढ़ेंगे, तो कहेंगे कि इनको छपवाना चाहिए। मैं कभी नॉवेल लिखूंगा, तो उन खतों को उसमें जरूर इस्तेमाल करूंगा। आपके ख्याल में नॉवेल कितने दिनों में लिखा जा सकता है? मेरा दावा है कि मैं दो महीनों में लिख सकता हूं। प्लॉट तो आप जानते ही हैं, बना-बनाया तैयार है। और आपकी दुआ से कलम में जोर और रवानी भी है। बस, आपकी थोड़ी-सी सलाह की जरूरत है।"

"आप कुछ नॉवलिस्टों के अच्छे नॉवेलों को पढ़ लें, तो बहुत अच्छा होगा," मैंने सलाह दी।

"वे सब तो मेरे पड़े हुए हैं। मोपासां को तो चाट गया हूं। और सच यह है कि उस फ्रांसीसी लेखक ने औरत के कैरेक्टर को जिस तरह पेश किया है, वह उसीका हिस्सा था। रह गए हिंदुस्तानी लिखनेवाले, तो साफ बात यह है कि मैं इनमें से किसीका कायल नहीं हूं। और आपके कृशनचंदर वगैरा भी बस यों ही हैं। हां, आपका मैं काफी कायल हूं। मगर आपके यहां गहरे वैज्ञानिक विश्लेषण की बड़ी कमी है और वह मैं पूरी कर सकता हूं। अगर मेरे तजुरबे को आपके कलम की

रवानी मिल जाए, तो कोई हमारे मुक़ाबले में नहीं आ सकता। मैं आपको कहानियों के लिए मसाला देता रहूं और आप कहानियां लिखते रहें।"

मैंने यह कहना उचित न समझा कि मसाला तो आप इस वक्त भी काफ़ी से ज्यादा मोहैया कर रहे हैं।

"अब्बाससाहब, सच बात यह है कि दुनिया सच्ची मुहब्बत को बरदाश्त नहीं कर सकती। शकुंतला को मुझसे कितनी मुहब्बत थी, उसका अंदाज़ा इससे लगा लीजिए कि वह मुझसे शादी करने को तैयार थी। और तो और, उसने मुझे अपने बाप यानी राजासाहब का ए० डी० सी० बनवा दिया। पर दुनिया को कब वह गवारा था? चुगलियां, शिकायतें होने लगीं। मेरी कुछ तस्वीरें थीं। एक यहीं लखनऊ की बड़ी हसीन तवायफ़ है, उसके साथ। क्या नाम है उसका? बड़ा अच्छा सा है।···ओह, याद ही नहीं आता। हां, तो एक ज़माने में हमारा आना-जाना था उसके यहां। मुहब्बत-वुहब्बत तो खैर क्या हो सकती है रंडियों के साथ, लेकिन हां, वह पसंद थी हमें। मज़ाक-मज़ाक में उसके साथ चंद तसवीरें खिंचवाई थीं। दुश्मनों ने वे तसवीरें शकुंतला के पास पहुंचा दीं और न जाने क्या-क्या कान भरे। नतीजा यह हुआ कि राजासाहब ने रातों-रात उसे मसूरी से पेरिस भिजवा दिया। और मैं लाख हाथ-पांव मारता रहा, लेकिन हमारे अब्बा ने हमें पेरिस न जाने दिया।···बड़ी-बड़ी चोटें खाई हैं, साहब, मुहब्बत के इस मैदान में!"

बार के बंद होने का समय हो गया था। बैरा बिल ले आया।

वह बिगड़ गया, "तुम्हारी यह मजाल कि हमें बार से निकालते हो? जानते हो, मैं कौन हूं?"

इस तू-तू मैं-मैं में मैनेजर आ गया। उसने कहा, "मुझे सरकारी आर्डर है बारह बजे बार बंद करने का, नहीं तो मुझ पर जुर्माना होगा। अगर नहीं जाएंगे, तो मुझे पुलिस को बुलाना पड़ेगा।"

पुलिस का नाम सुनकर मेरा हाल ठंडा पड़ [illegible] । अच्छा-अच्छा, जाते हैं।" यह कहकर उसने दूसरे पेग का अंतिम घूंट चढ़ाया, बिल अदा किया और कांपती हुई टांगों से उठ खड़ा हुआ।

"माफ कीजिएगा, मुन्नासाहब! मगर दुनिया बदल रही है। आज हम ताल्लुकेदारों की यह नौबत आ गई है कि पुलिस का सिपाही डांट सकता है। नहीं तो हमारे दादा के वक्त में···मगर खैर, वह बादशाह ही रहे हों, हमें क्या? और सच यह है, मुन्नासाहब, कि ताल्लुकेदारी, जमींदारी खत्म हो रही है, तो अच्छा ही हो रहा है। आखिर क्यों हमें खून चूसने के लिए छोड़ दिया जाए! दुनिया में यही होता आया है। बड़ी मछली छोटी मछली को खाती है। हमने रैयत का खून चूसा, कांग्रेस हमें खत्म कर रही है और कल कांग्रेस को कम्युनिस्ट खत्म कर देंगे। चीन में आप जानते ही हैं कि क्या हो रहा है। बस यह कांग्रेसवाले ज्यादा-से-ज्यादा पांच बरस के मेहमान हैं। मगर इनके हक में एक बात जरूर कहूंगा, मुआवजा बुरा नहीं अच्छा दे रहे हैं। बेकार जमीन के बदले नकद रुपया! मैंने तो सोच लिया है कि बीस-तीस हजार जो भी मिलेगा, वह लेकर बंबई आ जाऊंगा, और हम, आप मिलकर जर्नलिज़्म करेंगे। मैं और आप···आप और मैं···"

और यह कहकर, हजरतगंज की सड़क के बीचों-बीच मुझसे गले मिलना शुरू कर दिया।

"मैं और आप···आप और मैं··।"

"अरे, मुन्नन मियां, यहां आप क्या कर रहे हैं?" यह एक मैली-सी शेरवानी पहने हुए दुबला-पतला, काला-सा युवक था।

"कौन? अरे, पुत्तन! तू क्या कर रहा है?" और यह कहकर उसने मुझे छोड़कर उस नवागंतुक से गले मिलना शुरू कर दिया। वह भी कुछ पेग चढ़ाए हुए था, क्योंकि दोनों ओर से गले मिलने में खूब उत्साह दिखाया जा रहा था।

"मुन्नन मियां, चलते हो चौक?"

"चौक-चौक जाना मैंने छोड़ दिया है। मगर ये हमारे दोस्त हैं,

अब्बाससाहब। बंबई से आए हैं। चलो, इनको सैर करा दें। मैं तो मुद्दत से उधर गया ही नहीं। कोई है माकूल सूरत ?"

"अरे, है क्यों नहीं ? चंपा के यहां ले चलता हूं। तबीयत फड़क जाएगी, मुन्नन मियां।"

"चंपा ? चंपा ?" उसने मस्तिष्क पर ज़ोर डालते हुए दोहराया, "कोई नई होगी। चलो, देखें तो।"

मेरी राय किसीने पूछी ही नहीं और मोटर चौक की तरफ़ रवाना हो गई। रास्ते में उसने मुझसे कहा, "अब्बाससाहब, सिर्फ़ आपकी ख़ातिर इस कूचे में फिर क़दम रख रहा हूं, नहीं तो मैंने तो यह रास्ता ही छोड़ दिया है।"

सड़क के किनारे मोटर रोककर गलियों में पैदल चलना पड़ा। अंधेरी, तंग, दुर्गंधित गलियां ! किंतु मेरे दोस्त के क़दम इन गलियों के घुमाव-फिराव से परिचित थे। रास्ते भर वह प्रत्येक कोठे के बारे में बयान करता रहा, "यह मज्जन का कोठा है। हमारे दादा ने यहीं सवा-लाख रुपया लुटाया है।...और यहां हमारे चचाजान ने दो लाख मुशतरी पर न्योछावर कर दिए।...शुरू-शुरू में मैं यहां आया करता था। मगर बड़ी जल्दी मोटी हो गई।...और मुझे मोटी औरतों से नफ़रत है। मैं तो कहता हूं, औरत में नज़ाकत नहीं तो कुछ भी नहीं।"

गंतव्य स्थान आ गया। कोठे पर चढ़ने से पहले उसने मुझे रोककर कहा, "अब्बाससाहब, भूलिएगा नहीं...बंबई...मैं और आप... हम दोनों जर्नलिज़्म करेंगे जर्नलिज़्म...यह शरीफ़ों का वायदा है।"

"अरे, आओ भी, मुन्नन मियां। छोड़ो इन बातों को।" उस दुबले-पतले, काले युवक ने कहा।

और हम सीढ़ियों पर होते हुए कोठे पर पहुंच गए।

एक काली, भद्दी स्त्री ने हमारा स्वागत किया और पुत्तन को साथ लेकर दूसरे कमरे में चली गई। हम दोनों चांदनी के फ़र्श पर गाव तकियों के सहारे बैठ गए। दीवार पर एक सुंदर युवती की बहुत-सी तसवीरें टंगी हुई थीं, अधिकांश अकेली। किंतु कुछ चित्रों में वह किसी सुंदर

युवक के साथ थी। मैं जिज्ञासु की भांति खड़ा होकर उन चित्रों को देखने लगा। वह सुंदर युवक मेरा मित्र ही था। मुझे इससे कोई विशेष अचरज न हुआ। मैं उससे इनके बारे में कुछ कहने के लिए घूमा ही था कि देखा, एक दुबली-पतली, कोमल नख-शिखवाली युवती कमरे में प्रवेश कर रही है। मेरा मित्र एकाएक खड़ा हो गया और संबोधित कर चिल्ला पड़ा, "लो, अब याद आ गया वह नाम। चंपा! चंपा ही तो था!"

"आपने तो हमें भुला ही दिया, मुन्नन मियां," युवती ने बैठते हुए बड़े अंदाज़ से कहा, "ईद का चांद भी तो साल में एक बार निकल आता है। पर आप तो दो साल से गायब हैं।"

वह बोला, "लाहौल विलाकूवत! माफ करना इतने दिनों के बाद मुलाकात हुई है।"

चंपा नकली ठंडी सांस भरकर बोली, "आप तो हमें भूल ही गए, सरकार।"

"क्या बात करती हो? भला तुम्हें भूल सकता हूं? हां, यह और बात है कि तुम्हारा नाम भूल गया था।"

चंपा ने गाना शुरू किया। बुरा गाती थी।

उसने मेरे कान में कहा, "कहिए, क्या राय है?"

मैंने जवाब दिया, "शक्ल-सूरत अच्छी है।"

"अच्छी है? बस! इसी पर आप स्टोरी-राइटर और लेखक होने का दावा करते हैं?...गजब है, साहब, गजब! जरा नजाकत तो मुलाहज़ा कीजिए। सच पूछिए, तो साहब, इस नजाकत पर ही तो हम लखनऊवाले मरते हैं।"

चंपा अपनी बेसुरी आवाज़ में गाती रही। एक सिगरेट से दूसरा सिगरेट जलता रहा और धुएं के हलकों की जंजीर में वह फिर गिरफ्तार हो गया।

जब दो बजे, तो मैंने कहा, "अब चलो, भाई। मुझे सुबह की गाड़ी से जाना है।"

वह बोला, "छोड़ो यार, गाड़ी-वाड़ी को !"

मैंने कहा, "मुझे परसों बंबई पहुंचना है।"

उसने कहा, "गोली मारो बंबई को।"

मैंने कहा, "मुझे जरूरी काम है वहां।"

उसने कहा, "इससे बढ़कर कोई जरूरी काम दुनिया में नहीं। जिंदगी है तो यह है।···आपको हमारी क़सम···इसकी क़ातिल मुस्कराहट तो देखिए।"

मैंने कहा, "मैं जाता हूं।"

उसने कहा, "आपकी मरज़ी !···बंदा तो यहीं ठहरनेवाला है।" और यह कहकर उसने धुएं के छल्लों की ज़ंजीर का एक और घेरा अपने गिर्द डाल लिया।

चलते-चलते मैंने कहा, "और वह जर्नलिज़्म ?"

उसने जैसे यह शब्द ही आज पहली बार सुना था। "जर्नलिज्म ?... जर्नलिज्म ?···जर्नलिज़्म की ऐसी-तैसी ?"

ज़ीने पर उतरने से पहले मैंने पीछे मुड़कर देखा, तो वह अर्ध बेहोश हालत में गाव तकिए के सहारे पसरा पड़ा था, मानो मरणासन्न हो। पास ही ऐश-ट्रे के पानी में असंख्य सिगरेटों की लाशें सड़ रही थीं। चंपा गा रही थी। वे दोनों एक धुएं की ज़ंजीर में बंधे हुए थे और वह बड़बड़ा रहा था, "जर्नलिज़्म !···हुंह ! जर्नलिज्म की ऐसी-तैसी !"

ऐसी-तैसी तो मैंने सेंसर के डर से लिखा है, नहीं तो उसने कुछ और ही कहा था।

डैड लैटर

"डार्लिंग !"

"जी ?"

"प्रमोद्‌जी ने आज शाम को ब्रिज और खाने के लिए बुलाया है। याद है न ?"

"जी।"

"तो मैं ऑफिस से साढ़े-पांच तक आ जाऊंगा। तुम तैयार रहना।"

"जी।"

जी ! जी ! जी ! बारह वर्ष से वह यह एक-अक्षरी शब्द अपनी पत्नी की ज़बान से सुन रहा था। हर बातों में से सौ का जवाब वह केवल 'जी' से देती थी। जैसे पढ़ाया हुआ तोता केवल एक शब्द बोल सकता हो। जी ! जी !

सुधीर सक्सेना, आई० सी० एस०, डिप्टी कमिश्नर, जिला नारायण-गंज के बारे में हर एक की राय थी कि दुनिया में उससे बढ़कर सौभाग्यशाली कोई न होगा। ऊंचा ओहदा, अच्छा वेतन, रहने के लिए आरामदेह मकान, विमला-जैसी सुव्यवस्थाप्रिय और पढ़ी-लिखी पत्नी, जो कमिश्नरसाहब के साथ ब्रिज खेल सकती थी, राजासाहब रामनगर के साथ डांस कर सकती थी और तीन सुंदर, चतुर बच्चों की मां थी। सबसे बड़ा था रणधीर, जो दस वर्ष की उम्र ही में

विमला के कम बोलने में ! जैसे आंधी और तूफ़ान और कड़क-चमक के बाद वर्षा थम गई हो और गुलाब की पंखुड़ियों पर से नन्हीं-नन्हीं बूंदें घास पर टपक रही हों ! कितनी भारतीयता थी उस 'जी' में, कितनी कोमलता और मिठास, कितनी पवित्रता और लाज !

"आप डांस करती हैं ?"

"जी नहीं।"

उनके मित्र नाचनेवालों की भीड़ में खो गए थे और अब वे दोनों अपनी मेज पर अकेले थे। सुधीर ने सोचा, 'अंत में मेरी तलाश आज समाप्त हो गई। विमला से अच्छी पत्नी मुझे नहीं मिल सकती। यह सुंदर है, मगर शुक्र है कि शोख़ तितली नहीं, जो एक फूल से दूसरे फूल पर भटकती फिरे ! पढ़ी लिखी है, मगर अपनी राय की पक्की और जबान की तेज नहीं है। खाते-पीते घराने की मालूम होती है, मगर इतनी अमीर भी नहीं है कि एक आई० सी० एस० के प्रस्ताव को ठुकरा दे। इससे शादी करके इन्सान सचमुच सुख और शांति का जीवन व्यतीत कर सकता है।'

और उसने कहा, "तो आपके पिता···"

"वह लखनऊ में रहते हैं। आर्ट स्कूल में पढ़ाते हैं।"

"ओह, आप आर्टिस्ट बैनर्जी की बेटी हैं ? उनके चित्रों की प्रदर्शनी तो हमारे पटना में हो चुकी है।" और फिर उसने सफ़ाई से झूठ बोला, "मुझे उनकी तसवीरें बहुत पसंद आई थीं," यद्यपि उस समय उसने सोचा था कि न जाने इन टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों और नीले-पीले रंग के धब्बों में क्या धरा है, जो लोग उनकी इतनी प्रशंसा करते हैं ? इस क्षण उसे इन चित्रों में से एक विशेष चित्र याद आया एक ग्यारह-वर्षीया चंचल, चपल बच्ची का चित्र, जो साबुन-घुले हुए पानी के रंगीन बुलबुले बनाकर उड़ा रही थी। चित्र का नाम था—'बुलबुले !'

"वह चित्र 'बुलबुले' आपका ही था न ?"

"जी।"

"उसमें आप बहुत चंचल मालूम होती थीं। पर अब तो आप

बहुत सीरियस हो गई हैं।"

सिर्फ इस बार उसने 'जी' कहकर जवाब नहीं दिया। एक अजीब-सी, थकी हुई-सी, बुझी हुई-सी मुस्कराहट के साथ बोली, "बुलबुले की जिंदगी भी कितनी होती है? हवा का एक हलका-सा झोंका भी आया और बुलबुला टूट गया। बस ख़त्म!"

जब तक वह मसूरी में रहा, उसका अधिकतर समय विमला की सोहबत में गुज़रा। इकट्ठे वे गडाल चोटी तक चढ़े और कैंपटी फाल देखने गए।

इन तमाम दिनों में विमला ने मुश्किल से एक दर्जन वाक्य उससे कहे होंगे। सुधीर की बातों को वह बड़ी ख़ामोशी और एकाग्रता से सुनती। जब तक वह सीधा सवाल न करता, वह किसी बात पर भी अपनी राय न देती। मगर सुधीर को विमला के कम बोलने से कोई शिकायत न थी। बातूनी लड़कियां, जो संसार के हर सवाल पर राय रखती हैं और व्यक्त करना आवश्यक समझती हैं, उसे बिलकुल पसंद न थीं। उसे तो यही अच्छा लगता था कि वह बोलता जाए और विमला बैठी सुनती रहे और 'जी, जी' करती रहे। जब सुधीर को विश्वास हो गया कि वह विमला को बहुत पसंद करने लगा है, बल्कि शायद उससे प्रेम भी करने लगा है, तो एक दिन एकांत में अवसर पाकर उसने 'प्रोपोज़' भी कर डाला।

"विमला, तुम्हें मालूम है न, कि मैं तुम्हें बहुत पसंद करने लगा हूं?"

"जी।"

"तुम्हारे बिना मैं नहीं रह सकता। क्या तुम मुझसे शादी करोगी?"

"जी।" इस 'जी' में सवाल भी था और जवाब भी।

थोड़ी देर की ख़ामोशी के बाद वह बोली, "देखिए, मैं आपका

नैनीताल के एक अंग्रेजी स्कूल में जूनियर कैंब्रिज में पढ़ रहा था और अपनी क्लास की क्रिकेट-टीम का कप्तान था और बिलकुल एंग्लो-इंडियन लड़कों की तरह अंग्रेजी में बातचीत कर सकता था। उससे छोटी थी सात-वर्षीया उषा, जो मां की तरह ही दुबली-पतली, नाजुक-बदन थी और वैसी ही बड़ी-बड़ी आंखों और वैसे ही सुनहरे बालों-वाली थी। वह नारायणगंज के एक कॉनवेंट स्कूल में थर्ड स्टैंडर्ड में पढ़ रही थी और उसे सारे नर्सरी-राइम्स जबानी याद थे और 'ट्विंकिल ट्विंकिल लिटिल स्टार'-जैसी कविताएं तो वह फर्राटे से गाकर सुना सकती थी और फिर सबसे छोटी थी शांति, जो अभी मुश्किल से तीन वर्ष की थी और 'बेबी' कहलाती थी और माता-पिता, दोनों की आंख का तारा थी और बड़े प्यारे अंदाज से तुतला-तुतलाकर 'डैडी, टा-टा' या 'मम्मी, बाई-बाई' कहना सीख रही थी।

हां, तो सभी सुधीर सक्सेना, आई० सी० एस० को अत्यधिक सौभाग्यशाली समझते थे और कभी-कभी वह खुद भी यही समझता था। जो कुछ उसे हासिल था, उससे अधिक वह जीवन में किस चीज की आशा कर सकता था? मगर फिर वह अपनी पत्नी की जबान से यह एक-अक्षरी शब्द 'जी' सुनता—विमला के फीके, बेरंग, थके हुए अंदाज में—और उसकी खुशी और खुशकिस्मती, दोनों पर संदेह और एक हद तक निराशा के बादल छा जाते।

जी! कब से यह शब्द उसके जीवन में गूंज रहा था।

बारह वर्ष हुए, वे पहली बार मसूरी में मिले थे। सुधीर उस समय महीने भर पहले इंग्लिस्तान से आया था और नियुक्त होने से पहले कुछ सप्ताह छुट्टी मनाने आया हुआ था। मसूरी खाते-पीते घरानों की सुंदर, सुसज्जित और दिलचस्प लड़कियों से भरा हुआ था। लाइब्रेरी के सामने हर शाम को लहराती हुई रंगीन साड़ियों, चुस्त कमीजों,

रेशमी शलवारों और गले में झूलते हुए दुपट्टों की नुमाइश होती। ऊंची एड़ी के जूतों पर इठलाती हुई चाल, निडर निगाहें, शोख जवानियां, बांकी चितवनें, रंगे हुए होंठ, नोचकर बारीक की हुई भवें, पाउडर से दमकते हुए गाल, पर्म किए हुए बाल। हर नौजवान को देखने की खुली दावत थी। मगर न जाने क्या, सुधीर को सारी मसूरी में कोई सूरत पसंद आई, तो सिर्फ एक बिमला, जिससे पहली बार उसकी भेंट हैकमैन होटल में एक शाम को टी-डांस के दौरान हुई थी।

"हैलो, सुधीर!" उसके पटना के मित्र माथुर ने उसे हाथ से इशारा करके अपनी मेज़ की तरफ बुलाते हुए कहा था, "यहां आओ यार, और इनसे मिलो।...आप हैं बिमला बैनर्जी। हैं तो बंगाली, मगर लखनऊ में पली हैं। वहीं कॉलिज में पढ़ती हैं।"

सुधीर ने देखा कि बगैर पाउडर के गोरे-गोरे चेहरे पर दो बड़ी-बड़ी आंखें हैं, जिनकी गहराई में कोई दुख छुपा हुआ है, और जिनके गिर्द काले गड्ढे हैं, और लंबी सुहानी-शरमीली पलकें हैं, जो रातों की जागे हुए पपोटों के बोझ से झुकी जा रही हैं।

वह माथुर के अनुरोध की प्रतीक्षा किए बिना ही बिमला के पास की कुरसी पर बैठ गया और फिर उसके लिए उस खचाखच भरे हुए बॉल-रूम में बिमला के सिवा और कोई न रहा।

बारह बरस के बाद भी उनकी वह सबसे पहली बातचीत आज तक उसकी याद में ताज़ा थी।

"तो आप आई० टी० कॉलिज में पढ़ती होंगी?"

"जी।"

"बी० ए० में?"

"जी।"

"अगले साल फ़ाइनल की परीक्षा देंगी?"

"जी।"

दो वर्ष तक अंग्रेज स्त्रियों के कर्कश,

सप्ताह मसूरी की चीख-पुकार से गुज़ारने

बहुत आदर करती हूँ। इसलिए मैं आपको धोखा नहीं देना चाहती। मैं आपसे प्रेम नहीं करती।"

"क्या तुम किसी और से प्रेम करती हो?"

विमला की ज़बान से 'जी नहीं' कभी ही निकलता था, मगर इस बार उसने कहा, "जी, नहीं।" और फिर एक क्षण की खामोशी के बाद, जिसमें शायद उसी बात का समावेश था, बोली, "ऐसा कोई नहीं है।"

सुधीर को विश्वास हो गया। उसने कहा, "तो फिर कोई हर्ज नहीं। मैं तुम्हें अपने से प्रेम करना सिखा दूंगा।"

उस दिन जुलाई १९४० की १४ तारीख थी।

नौकर ने डाक का पुलिंदा लाकर सुधीर के सामने रख दिया। सबसे पहली ही चिट्ठी जो उसने खोलने के लिए उठाई, तो उसकी नज़र डाकखाने की मुहर पर पड़ी—'नारायणगंज—१४ जुलाई, १९५२।' एक क्षण में सुधीर की याद में बारह बरस पहले का वह दिन चौंककर जिंदा हो गया।

लिफ़ाफ़े को छुरी से खोलते हुए सुधीर ने विमला से पूछा, "जानती हो, आज क्या तारीख है?"

"जी!" और उसकी दृष्टि सामने की दीवार पर लगे हुए कैलेंडर पर गई।

"बारह वर्ष पहले का वह दिन याद है, जब मसूरी में मैंने तुमसे 'प्रोपोज़' किया था?"

"जी।" मगर इस 'जी' में केवल स्वीकृति थी, प्रफुल्लता नहीं। सुधीर बारह वर्ष पहले की जिस राख को कुरेदना चाहता था, वह बिलकुल ठंडी थी, ऐसा लगता था कि उसमें कभी भी कोई चिनगारी न थी।

मगर सुधीर ने विमला के चेहरे पर एक रंग आते और दूसरा जाते नहीं देखा। वह पत्र खोलकर पढ़ रहा था, जो उसके कॉलेज के पुराने और बेतकल्लुफ़ दोस्त माथुर के पास से आया था, जो अब पटना में

वकालत करता था। पत्र पर नज़र डालते ही सुधीर मुस्करा दिया, क्योंकि माथुर ने लिखा था, "यार, तुम कितने खुशकिस्मत हो! बिमला-जैसी पत्नी पाई है। भैया, हमें दुआएं दो कि उस दिन हैकमैंस में तुम्हारी भेंट उससे कराई! मगर इस दुनिया में कौन किसीका एहसान मानता है?"

"सुना तुमने, माथुर ने क्या लिखा है?"

"जी?"

सुधीर ने बिमला के विषय में जो वाक्य माथुर ने लिखे थे, वे पढ़ सुनाए और फिर दूसरे पत्रों को खोलकर पढ़ने में व्यस्त हो गया। उसने यह नहीं देखा कि माथुर के दोस्ताना मजाक को सुनकर बिमला की आंखों में कोई चमक पैदा नहीं हुई। केवल होंठों पर एक कड़वी-सी मुस्कराहट का तनाव पैदा हुआ और फिर एकाएक गायब भी हो गया।

दूसरा पत्र जो सुधीर ने खोला, वह क्लब का बिल था। वह उसने बिमला की तरफ बढ़ा दिया, क्योंकि बिलों का भुगतान वही करती थी। तीसरा पत्र आई० सी० एस० एसोसिएशन से आया था, वार्षिकोत्सव और चुनाव के विषय में।

"सुना बिमला तुमने? इस साल बलदेव और एहसान वगैरा सैक्रेटरी के लिए मेरा नाम 'प्रोपोज़' करना चाहते हैं।"

"जी।"

चौथा पत्र उठाया। मगर वह उसके नाम नहीं, बिमला के नाम था। एक मोटा मगर पीला, पुराना-सा लिफ़ाफ़ा था, जिस पर कितनी ही मुहरें लगी हुई थीं और कई बार पते में काट-छांट की गई थी। और यह क्या? मिस बिमला बैनर्जी! यह कौन बदतमीज़ है, जो मिसेज़ बिमला सक्सेना को शादी के बारह वर्ष बाद भी 'मिस' लिखता है?

सुधीर ने एक नज़र बिमला की ओर देखा, जो उस समय नौकर

को दोपहर के खाने के बारे में हिदायतें देने में व्यस्त थी। यह इतमीनान करने के बाद कि विमला ने अपना पत्र नहीं पहचाना, सुधीर ने सावधानी रखकर, लिफ़ाफ़ा खोला। शादी के बाद कई वर्ष तक उसने विमला के नाम आए हुए जितने ही पत्र चुपके-चुपके खोलकर पढ़े थे। मगर सिवाय कॉलेज की सहेलियों या रिश्ते की बहनों वगैरा के कोई संदेहात्मक पत्र न मिला था। मगर न जाने क्यों, इस पत्र के लिफ़ाफ़े ही से मालूम होता था कि इसमें कोई पुराना भेद जरूर है। शायद आज उसे मालूम हो सके कि इस 'जी' की उकताहट और बेदिली के पीछे कौन सी चीज छिपी हुई है।

लिफ़ाफ़े से कई पृष्ठों का लंबा पत्र निकला, मगर उसकी पहली कुछ पंक्तियां ही सुधीर की शांति सदा के लिए भंग करने के लिए पर्याप्त थीं। लिखा था :

"जान से ज्यादा प्यारी विमला,

तुमसे मिले दो महीने हो चुके हैं। मेरे लिए ये दो महीने दो बरस से भी अधिक लंबे हैं। क्या हम सदा इसी तरह छिप-छिपाकर ही मिल सकेंगे? यह दीवार जो हमारे बीच खड़ी है, क्या यह कभी ढाई न जा सकेगी..."

क्रोध और घृणा के जोश से सुधीर के हाथ कांप रहे थे। इससे आगे उससे यह पत्र पढ़ा नहीं गया—यह पत्र, जो उसकी पत्नी की बदचलनी का घोषणा-पत्र था। जल्दी-जल्दी पृष्ठ उलटकर, उसने अंतिम पृष्ठ पर नजर डाली। पत्र के अंत में लिखा था, "सदा सदा के लिए तुम्हारा—अनिल।"

अनिल! उसके मस्तिष्क में यह अनजाना नाम एक बम के गोले की तरह फटा।

"विमला!" वह चिल्लाया।

और विमला, जो उस समय कमरे के बाहर जानेवाली थी, ठिठककर दरवाजे पास रुक गई।

"जी!"

जी ! जी ! जी ! वही मुलायम, ठंडा, फीका जी ! और इस समय सुधीर को ऐसा लगा, जैसे यह छोटा-सा शब्द एक ताना हो, एक गंदी गाली हो, एक तमाचा हो, जो उसकी पत्नी ने उसके मुह पर मार दिया हो।

"जी ?"

"अनिल कौन है ?"

सुधीर ने यह प्रश्न इतने अचानक किया कि कुछ क्षण तक विमला भौंचक-सी खड़ी रही, जैसे समझी ही-नहीं हो कि उससे क्या पूछा गया है। मगर फिर जैसे धीरे-धीरे सूर्य पर से बादल हट जाते हैं और बरसात की भीगी धूप जमीन पर फैल जाती है, उसी तरह एक धीमी, मीठी, नरम मुस्कराहट उसके चेहरे पर खेल गई।

"अनिल !" उसने नरम आवाज में नाम दुहराया—जैसे मा बच्चे का नाम लेती है, जैसे भक्त भगवान का नाम लेता है, जैसे कवि अपनी प्यारी कविता गुनगुनाता है। और उसकी आंखें एक नए प्रकाश से चमक उठीं—वह प्रकाश, जो बारह वर्ष तक सुधीर ने कभी अपनी पत्नी की आखो मे नही देखा था।

"हा, हा, अनिल ! कौन है वह ?" विमला की आंखो मे उस नए प्रकाश को देखकर सुधीर आपे से बाहर हुआ जा रहा था।

मगर विमला किसी दूसरी ही दुनिया मे थी। उसकी आखें दूर, बहुत दूर न जाने क्या देख रही थीं। कोई बहुत सुदर दृश्य ? कोई दिलकश याद ? आशा की कोई किरण ?

"वह सब कुछ है !" उसके मुस्कराते होठों ने सुधीर से नही, बल्कि दुनिया से कहा। फिर उन होठो की मुस्कराहट बुझ गई और उन पर कड़वा व्यंग्य उभर आया। "और अब वह कुछ नहीं है !" और फिर किसी अज्ञात दुख के बोझ से उसकी गर्दन झुक गई।

"पहेलिया मत बुझाओ !" सुधीर चिल्लाया। उसका जी चाहता था कि मेज को उलट दे, उन तमाम चीनी के बर्तनो को चकनाचूर कर दे, चायदानी को उठाकर विमला के सिर पर दे मारे। "सच-सच

बताओ, क्या तुम उससे प्रेम करती हो ?"

झुकी हुई गर्दन फिर उठ गई। आंखों के डबडबाते आंसुओं में से फिर वह प्रकाश झलकने लगा। फीके और बेरंग अंदाज में केवल 'जी' कहनेवाली बिमला ने सगर्व सिर उठाकर, सुधीर की आंखों में आंखें डाल दीं। बोली, "जी हां, आपका खयाल ठीक है।"

और उस क्षण सुधीर की दुनिया एकाएक अंधेरी हो गई। उसे ऐसा लगा, जैसे बिमला ने उसकी इज्जत पर, उसकी आई० सी० एस० की शान पर, उसके पुरुषत्व पर सदा के लिए कालिख पोत दी हो। उसे ऐसा महसूस हुआ, जैसे बिमला ने उसे ऐसी गंदी गाली दी है, जो उम्र भर उसके कानों में गूंजती रहेगी। उस समय शिक्षा और संस्कृति और सभ्यता के सब छिलके उस पर से उतर गए। अब वह लंदन का पढ़ा हुआ बैरिस्टर नहीं था, आई० सी० एस० एसोसिएशन का होनेवाला सेक्रेटरी नहीं था, क्लब का लोकप्रिय सदस्य नहीं था, नारायणगंज जिले का डिप्टी कमिश्नर नहीं था, जिसकी मुट्ठी में एक लाख से ज्यादा इन्सानों की क़िस्मत थी। इस समय वह केवल एक नंगा वहशी था, गुस्से और जोश में आया हुआ एक मर्द, जिसकी औरत ने उसे धोखा दिया था।

वहशी चिल्लाया, "निकल जाओ इस घर से! इसी वक़्त! इसी दम!"

•

बिमला के चेहरे पर न क्रोध के चिह्न पैदा हुए, न दुख के। वह अब भी किसी दूसरी ही दुनिया में थी। उसने सुधीर की चीख़ को ऐसे सुना, जैसे बहुत दूर से कोई धीमी-सी आवाज आई हो। और एक बार फिर उसके होंठ एक मासूम-सी मुस्कराहट से खिल गए, जैसे भटके हुए यात्री को बड़ी तलाश के बाद रास्ता मिल जाए। जैसे वह देर से, बारह वर्ष से इस घड़ी की प्रतीक्षा कर रही थी और अंत में

वह शुभ साइत आ ही पहुंची।

उसने कोई उत्तर नहीं दिया। केवल एक नजर अपने पति की तरफ देखा। इस नजर में शिकायत नहीं, दया थी, क्षमा थी। जैसे उसकी आंखें कह रही हों, "इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। तुम इन बातों को नहीं समझोगे।" फिर वह अपने बेड-रूम में गई और वहां से अपनी छोटी बच्ची को गोद में लेकर, बरामदे में से होती हुई, बाहर निकल गई। उसके कदमों की आवाज दूर होती गई—यहां तक कि बाहर सड़क के शोर में हमेशा के लिए खो गई।

सुधीर का विचार था कि वह रोएगी, गिड़गिड़ाएगी, अपने गुनाह की माफी मांगेगी, भविष्य में अपने चरित्र को ठीक रखने का वादा करेगी। लेकिन वह इसके लिए तैयार नहीं था कि विमला सचमुच घर छोड़कर चली जाएगी। इस खामोश तमाचे से उसका सारा बदन झनझना उठा। हथौड़े की तरह उसके दिमाग पर एक ही चोट पड़ती रही। अनिल! अनिल! अनिल! "यह अनिल कौन है? मैं उसका पता लगाकर छोड़ूंगा। उस पर एक विवाहिता स्त्री को भगा ले जाने का दावा करूंगा, उसे जेल भिजवाऊंगा, उसे जान से मार दूंगा···!'

पागलों की तरह दौड़ता हुआ वह विमला के कमरे में पहुंचा। उसे मालूम था कि अपने वार्डरोब के एक खाने में विमला अपने पत्र इत्यादि रखती थी। चाबियों का गुच्छा सामने पलंग पर पड़ा था। जाते-जाते वह उसे फेंक गई थी। सुधीर ने वार्डरोब खोला, खाने को चाबी लगाकर बाहर खींचा। उसमें रखे हुए पत्रों के पुलिंदों और कागजों को टटोला। सबसे नीचे की तह में लाल रेशमी फीते से बंधे हुए कुछ पत्र रखे थे। जरूर ये अनिल के पत्र होंगे।

उसका विचार ठीक निकला। प्रत्येक पत्र में प्रेम का ऐलान—'विमला, मेरी जान!' 'मेरी अपनी विमला!' 'मेरी अच्छी विमला!' 'तुम्हारा और सिर्फ तुम्हारा अनिल!' 'इस दुनिया में और अगली दुनिया में तुम्हारा, तुम्हारा, तुम्हारा!' हर वाक्य एक जहरीले नश्तर

की तरह उसके दिल में लगता रहा। एक-एक करके वे पत्र ज़मीन पर गिरते रहे। मगर यह क्या ? पत्रों के बीच में तह किया हुआ अख़बार का एक पन्ना ? खोलने पर देखा कि एक नवयुवक के चित्र—गहरी चमकती हुई आंखें, ऊंचा माथा, मुस्कराते हुए होंठ—के नीचे यह समाचार छपा हुआ था :

नवयुवक कवि की मृत्यु

हमें यह सूचना देते हुए हार्दिक दुःख है कि लखनऊ के नवयुवक प्रगतिशील साहित्यकार और इनक़लाबी कवि अनिल कुमार 'अनिल' की मृत्यु हो गई। सन ३६ के सत्याग्रह में वह जेल गए थे और वहीं उन्हें तपेदिक की बीमारी हो गई थी...'

सुधीर सारी ख़बर पढ़ नहीं सका, इसलिए कि अख़बार के टुकड़े पर तारीख़ दी हुई थी—१८ जून, सन १९४० !

उसके हाथ से बाक़ी पत्र और अख़बार का टुकड़ा ज़मीन पर गिर पड़े। उसकी समझ में कुछ नहीं आया कि क्या बात है। अनिल ! अनिल ! अनिल ! क्या कोई मरकर भी ज़िंदा हो सकता है ?

खोए हुए मुसाफ़िर, हारे हुए जुआरी की तरह, वह खाने के कमरे में वापस आया। मेज़ पर अनिल का पत्र और लिफ़ाफ़ा पड़े हुए थे। उसने लिफ़ाफ़ा उठाकर एक बार फिर ध्यान से देखा। दर्जनों गोल मुहरों के बीच एक चौकोर मुहर लगी हुई थी, जिस पर अंग्रेजी के तीन अक्षर छपे हुए थे—डी० एल० ओ० (डैड लेटर ऑफ़िस)।

शुक्र अल्लाह का

नहीं साहब, कोई शिकवा-शिकायत नहीं। रिश्तेदारों, दोस्तों, दुश्मनों, सत्तियों, अफसरों, मालिकों—किसीसे कोई शिकायत नहीं है। न सरकार से कोई गिला है, न अल्लाह मियां से कोई शिकवा। वही होता है, जो मंजूरे-खुदा होता है। किस्मत के लिखे को कौन कैसे मिटा सकता है? सो मैं अपनी किस्मत पर संतुष्ट हूं और सुबह-शाम खुदा का शुक्र अदा करता हूं कि खाने को पुलाव-कोरमा नहीं, तो चटनी-रोटी तो भेज ही देता है, सिर के ऊपर आसमान के सिवा कोई दूसरी छत नहीं, तो क्या हुआ! सोने के लिए फुटपाथ के पत्थर तो हैं। मेरी कटी हुई टांग को देखकर रहम न खाइए, साहब! खुदा का शुक्र है, दूसरी टांग तो सही सलामत है...

सच पूछिए, तो संतोष ही हम गरीबों की सबसे बड़ी दौलत है। संतोष हमारी औरतों का जेवर है और हमारे बच्चों का खिलौना। आप महलों-बंगलों में रहनेवाले संतोष के फायदे क्या जानें? सूखी रोटी को संतोष की चटनी से लगाकर खाओ, तो मुर्ग मुसल्लम का मजा आता है। फिर सड़क के किनारे संतोष का मखमली गद्दा बिछाकर ऊपर से संतोष की रेशमी चादर ओढ़कर सो जाओ; ऐसी नींद आती है कि किसी राजा-नवाब को न आती होगी। और सुनिए! जब मशीन में आकर मेरी बाईं टांग कट गई और मिल-मालिकों ने हरजाना देने से इन्कार कर दिया और मैं एक कबाड़ी के यहां से दो रुपए में ये

टूटी हुई बैसाखियां खरीदकर उछलता-कूदता-लंगड़ाता हुआ एक डॉक्टर के यहां पहुंचा, जो नक़ली-अंग बनाने में निपुण था और उसने रबड़ की टांग लगाने के लिए हज़ार रुपए और लकड़ी की टांग के लिए पांच सौ मांगे और मेरी जेब में सिर्फ़ सात रुपए निकले, तो आप जानते हैं, मैंने क्या किया ? न रबड़ की टांग लगवाई न लकड़ी की— संतोप की टांग लगवा ली। उस दिन से आज तक उन्हीं टूटी हुई बैसाखियों और संतोप की टांग से गुज़ारा कर रहा हूं। संतोप हो, तो बैसाखियों की भी कोई ज़रूरत नहीं है, साहब ! अल्लाह ने हाथ दिए हैं, कूल्हे दिए हैं, वह सामने देखिए न, उस लुंजे कल्लू की तो दोनों टांगें बेकार हैं; फिर भी हाथों और कूल्हों के सहारे मज़े से घिसट-घिसटकर चल लेता है, और अल्लाह का शुक्र अदा करता है कि उसने टांगों के साथ बाहों पर फ़ालिज न गिरा दिया…

खुदा की मेहरबानी थी कि बचपन ही में मां-बाप संतोप का सबक़ मिला। हम जात के जुलाहे हैं, साहब ! यूं तो हम मुसलमानों में कोई जात-पांत नहीं होती; खुदा के बंदे सब बराबर हैं ! मगर अमीरी-ग़रीबी, ऊंच-नीच, शराफ़त-रज़ालत भी तो अल्लाह की ही बनाई हुई है। इसलिए मेरे बाप का कहना था कि इन्सान को अपना दरजा कभी न भूलना चाहिए और वह अमल भी हमेशा इसी असूल पर करता था। बूढ़ा होने पर भी वह शरीफ़ों के लौंडों तक को झुककर सलाम करता। हर पठान को "खांसाहब," हर सैयद को "मीरसाहब," हर बनिए को "लालाजी," हर ब्राह्मण को "पंडितजी," और छोटे-से-छोटे अफ़सर— यहां तक कि पटवारी, नंबरदार तक को—"सरकार" कहता था। मगर वे सब उसे "बुंदू जुलाहा" कहकर ही पुकारते थे। इन अमीरों शरीफ़ों के बच्चों को उजले कपड़े पहने, किताबें हाथ में लिए, स्कूल जाते हुए देखकर हम भाइयों का भी जी चाहता कि हमारे भी ऐसे कपड़े हों और पढ़-लिखकर हम भी अफ़सर बनें। मगर मेरा बाप हमें समझाता, "बेटा, अपनी औक़ात नहीं भूलनी चाहिए। खुदा ने जो दरजा दिया है, उसी पर सब्र-शुक्र से संतोप करना चाहिए, नहीं तो

'कोप्रा चला हंस की चाल' वाली कहावत हो जाएगी।" मेरे बाप को कहावतें बहुत याद थी और जैसा मौका होता, वह फौरन कोई न कोई कहावत सुना देता।

एक बरस की बात हम शहर के एक माड़वी बनिए के लिए कंबल बुना करते थे। वह हमें ऊन और फी कंबल डेढ़ रुपया कताई और बुनाई का देता और फिर उसी कंबल को दस-ग्यारह रुपए में बाजार में बेचता। हां, तो उस बरस ईद के मौके पर बाबा को माड़वी के यहां से रकम न मिली। बात यह थी कि उस साल विलायत और जापान से मशीन से बने हुए भाग-जैसे मुलायम कंबल बड़े सस्ते दामों में आ गए थे और हमारे मुजफ्फरनगर के कंबलों की मांग बहुत कम हो गई थी। सैकड़ों कंबल बिन बिके पड़े हुए थे और खुद हमारेवाले माड़वी ने विलायती कंबलों की ऐजेंसी ले ली थी। हां, तो जब बाबा को पचास-साठ कंबलों की बुनाई न मिली, तो वह बेचारा हमारे लिए ईद के कपड़े कहां से बनवाता? वही पिछले साल की ईद के कपड़े मां ने घर में साबुन से धोकर दे दिए। जब हमने अपने पड़ौस में वकील-साहब के बच्चों को रेशमी अचकनें और नई तुर्की टोपियां पहने देखा, तो हमें बड़ा रोना आया। पर बाबा ने कहा, 'अरे रोते क्यों हो? वह अमीर अपने भात में मस्त हैं, तो हम गरीब अपनी खाल में मस्त!" यह बात मेरे दिल में बैठ गई। वह दिन और आज का दिन, जब कभी मैं किसी अमीर रईस को बढ़िया कपड़े पहने अकड़फूं करते देखता हूं, तो फौरन मैं अपनी खाल में मस्त हो जाता हूं।

हां, साहब, तो जब मैं बड़ा हुआ, तो अपने बाप के साथ कंबल बुनने का काम करता रहा। मगर जब यह धंधा मंदा पड़ गया, तो मेरे बाप ने नंबरदार से सिफारिश करवाकर मुझे तहसीलदारसाहब के यहां नौकर रखवा दिया। तहसीलदारसाहब शहर के बाहर, तहसील

के पास, एक बंगले में रहते थे। अल्लाह बख्शे, खान कुदरतुल्ला खां नाम था उनका। बड़े रोब-दाबवाले थे। वे बड़ी-बड़ी मूंछें और आवाज ऐसी कि किसीको जोर से डांट दें, तो डर के मारे पेशाब निकल जाए! शहर-भर उनसे कांपता था। उनके यहां बस मैं ही एक नौकर था। तहसील के दो चपरासी भी कचहरी के वक़्त के बाद ऊपर का काम करते थे, मगर घर का सब काम-काज मुझे ही देखना पड़ता। खाना पकाने को एक बुढ़िया दो वक़्त आ जाती थी। मगर झाड़ू देना, कमरे की मेज-कुरसियों को रोज झाड़ना-पोंछना, तहसीलदारसाहब को हर पंद्रह-बीस मिनट के बाद हुक़्क़ा भरकर देना, बरतन धोना, बिस्तर बिछाना, बाजार से सौदा-सुलफ़ लाना—यह सब मेरा काम था।

और हां, इन सब कामों के अलावा एक काम और भी था। यह था तहसीलदारसाहब की बेटी बानो की किताबें उठाकर उसे स्कूल छोड़ आना। लड़कियों का स्कूल कोई दूर नहीं था, बंगले से मुश्किल से आधा मील होगा, और खेतों में से होकर जाओ, तो इससे भी कम। मगर तहसीलदारसाहब की शान के खिलाफ़ था कि उनकी बेटी खुद किताबें उठाकर ले जाए, इसलिए बानो को स्कूल पहुंचाना और वहां से वापस लाना, यह मेरा फ़र्ज़ था। और सच पूछिए, तो सारे कामों में मुझे यही काम सबसे अच्छा लगता था। उन दिनों कोई सत्रह-अठारह बरस का होऊंगा, साहब। खुदा के फ़ज़ल से नाक-नक़शा भी बुरा नहीं था और सेहत भी माशा-अल्लाह अच्छी थी। फिर तहसीलदारसाहब की दी हुई दो-चार पुरानी क़मीज़ें और शलवारें पहनकर और सिर के बालों में कड़वा तेल डालकर, मैं भी अच्छा-खासा जेंटलमैन लगता था। बानो स्कूल तो बुरक़ा ओढ़कर जाती थी, मगर मुझसे परदा नहीं करती थी। तहसीलदारसाहब परदे के मामले में वैसे तो बड़े कट्टर थे, मगर उनका कहना था कि नौकरों से क्या परदा? और वह यह ऐसे ही कहते, जैसे कोई कहे, घर के कुत्ते से क्या परदा, या बैल या घोड़े से क्या परदा?

हां, तो साहब, बानो मुझसे परदा नहीं करती थी। कोई पंद्रह या

सोलह बरस की होगी, सातवीं का इम्तहान देनेवाली थी। उसका हाल क्या बताऊं, आपसे ऐसी बातें करते शरम आती है। पर यह समझ लीजिए कि अल्लाह-मियां ने उसे अपने हाथ से बनाया था। रंगत ऐसी, जैसे मेदा और शहद, और काले रेशमी बुरके में मुंह निकालकर जब वह मेरी तरफ देखकर मुस्करा देती, तो ऐसा लगता था, जैसे बदली में से चांद निकल आया हो। घुंघराले बाल, ये बड़ी-बड़ी कटोरा-जैसी आंखें। मैं तो आदमी था, सरकार, और वह भी जवानी का आलम, पर फरिश्ते भी उसे देख लेते तो एक बार अपनी पारसाई[1] को भूल जाते। फिर भी वह मालिक की बेटी थी और मैं नौकर। कभी ऐसा-वैसा खयाल आता भी, तो मैं सोचता, "अबे ओ, बुड्ढे जुलाहे के बेटे, क्यों पागल हुआ है? अपनी औकात मत भूल, नहीं तो इतने जूते पड़ेंगे कि सिर गंजा हो जाएगा।" और यह सोचते ही मेरा नशा ऐसा गायब होता, जैसे गधे के सिर से सींग। पर, सरकार, झूठ क्यों बोलूं, अगले दिन जब उसकी किताबें उठाए खेतों में से होता हुआ बानो के साथ स्कूल जाता, और इधर-उधर किसीको न पाकर वह बुरका सिर से उतार देती और उसके बालों की भीनी-भीनी खुशबू हवा में फैल जाती, तो शैतान फिर मुझे भरमाने लगता और कहता, "अबे तू नौकर नहीं है और वह मालिक की बेटी नहीं है। तू भी जवान है और वह भी जवान!"

वैसे तो बानो तहसीलदारसाहब की इकलौती बेटी थी और बड़ी चहेती थी और उसके लिए दुनिया का हर ऐश-आराम मौजूद था, पर सचमुच वह बहुत दुखी थी। बात यह थी कि उसकी मां के मरने के बाद तहसीलदारसाहब ने दूसरी शादी

[1]पवित्रता, ब्रह्मचर्य

कंधे पर सिर रखे सिसकियां भर रही है। आप ही बताइए, ऐसे मौके पर कोई करे भी, तो क्या करे ? मेरा तो सांस ऊपर-का-ऊपर, नीचे-का-नीचे रह गया। "छोटी बीबी, क्या कर रही हो ? खानम देख लेगी, तो खाल उधेड़ देगी," मैंने आहिस्ता से कहा। और फिर जैसे ही दीवार पर लटकी हुई घड़ी ने साढ़े नौ का घंटा बजाया, मैंने कहा, "स्कूल जाने का वक़्त हो गया !" और स्कूल का नाम सुनकर बानो की सिसकियां थम गईं और मेरे गीले कंधे से सिर उठा उसने कहा, "चल ममदू, मेरी किताबें उठा। आज तो मेरे हाथों में कलम पकड़ने की ताक़त भी नहीं रही।"

उस दिन बानो स्कूल जाने के लिए घर से निकली, तो मैंने देखा कि बुरके के अंदर उसने एक पोटली-सी छिपाकर बग़ल में दबाई हुई है। स्कूल के रास्ते में बानो ने हमेशा की तरह नक़ाब उलट दी। रास्ता पगडंडी-पगडंडी खेतों में से जाता था। इधर-उधर देखकर वह बोली, "ममदू, यों तो मैं मर जाऊंगी।"

मैंने कहा, "हां, छोटी बीबी, यह खानम बड़ी ज़ालिम है।"

"फिर ?" और यह कहकर उसने मेरी तरफ़ यों नज़र भरकर देखा कि मेरा मुंह घबराहट से लाल हो गया।

"तहसीलदार साहब से क्यों नहीं शिकायत करती ? वह तुम्हारे बाप हैं आख़िर।"

"अब्बा से शिकायत की, तो यह डाइन मुझे जान से ही मार डालेगी। और फिर अब्बा मेरी बात क्यों मानने लगे ? तुमने देखा नहीं, उनके सामने कितनी चिकनी-चुपड़ी बातें करती है ?"

"फिर !" इस बार मैंने यह सवाल किया।

वह बोली—मेरी आंखों में आंखें डालकर, "चल, ममदू, कहीं भाग चलें। मेरे पास थोड़ा-सा ज़ेवर-गहना है। तीस-चालीस रुपए भी मैंने बचाकर रख छोड़े हैं।"

अमीर छोकरियां अपने नौकरों के साथ भाग जाती हैं, ऐसे क़िस्से मैंने सुने ज़रूर थे, मगर मैं समझता था कि ये बातें क़िस्से-कहानियों में

धे पर सिर रखे सिसकियां भर रही है । आप ही बताइए, ऐसे मौक़े पर कोई करे भी, तो क्या करे ? मेरा तो सांस ऊपर-का-ऊपर, नीचे-का-नीचे रह गया । "छोटी बीवी, क्या कर रही हो ? खानम देख लेगी, तो खाल उधेड़ देगी," मैंने आहिस्ता से कहा । और फिर जैसे ही दीवार पर लटकी हुई घड़ी ने साढ़े नौ का घंटा बजाया, मैंने कहा, "स्कूल जाने का वक्त हो गया !" और स्कूल का नाम सुनकर बानो की सिसकियां थम गईं और मेरे गीले कंधे से सिर उठा उसने कहा, "चल ममदू, मेरी किताबें उठा । आज तो मेरे हाथों में कलम पकड़ने की ताक़त भी नहीं रही ।"

उस दिन बानो स्कूल जाने के लिए घर से निकली, तो मैंने देखा कि बुरके के अंदर उसने एक पोटली-सी छिपाकर बगल में दबाई हुई है । स्कूल के रास्ते में बानो ने हमेशा की तरह नक़ाब उलट दी । रास्ता पगडंडी-पगडंडी खेतों में से जाता था । इधर-उधर देखकर वह बोली, "ममदू, यों तो मैं मर जाऊंगी ।"

मैंने कहा, "हां, छोटी बीवी, यह खानम बड़ी ज़ालिम है ।"

"फिर ?" और यह कहकर उसने मेरी तरफ़ यों नजर भरकर देखा कि मेरा मुंह घबराहट से लाल हो गया ।

"तहसीलदारसाहब से क्यों नहीं शिकायत करती ? वह तुम्हारे बाप हैं आख़िर ।"

"अब्बा से शिकायत की, तो यह डाइन मुझे जान से ही मार डालेगी । और फिर अब्बा मेरी बात क्यों मानने लगे ? तुमने देखा नहीं, उनके सामने कितनी चिकनी-चुपड़ी बातें करती है ?"

"फिर !" इस बार मैंने यह सवाल किया ।

वह बोली—मेरी आंखों में आंखें डालकर, "चल, ममदू, कहीं भाग चलें । मेरे पास थोड़ा-सा जेवर-गहना है । तीस-चालीस रुपए भी मैंने बचाकर रख छोड़े हैं ।"

अमीर छोकरियां अपने नौकरों के साथ भाग जाती हैं, ऐसे क़िस्से मैंने सुने ज़रूर थे, मगर मैं समझता था कि ये बातें क़िस्से-कहानियों में

कर ली थी। सौतेली मां तो, आप जानते ही हैं सरकार, बड़ी बला होती है; पर यह तहसीलदारसाहब की दूसरी बीबी खानम तो बहुत ही जालिम थी। सौतेली बेटी को एक घड़ी खुश देखना उसके लिए मुश्किल था। पर थी बड़ी चालाक। जब तक तहसीलदार-साहब घर में रहते, उनको दिखाने के लिए बानो से मीठी-मीठी बातें करती। पर जैसे ही वह कचहरी जाने के लिए घर से निकले, उसने चोला बदला। बात-बात पर गरीब बानो पर डांट पड़ती। पिटती भी बेचारी।

एक दिन सवेरे खानम ने अपने गोद के बच्चे के गू-मूत में सने हुए निहालचे पोतड़े धोने के लिए बानो को कहा। वह बेचारी स्कूल का काम कर रही थी, उससे जरा देर हो गई। खानम गोदाम में से खाना पकानेवाली को आटा-तेल देकर बाहर जो निकली, तो देखा, निहालचे वैसे ही पड़े हैं। बस, आग ही तो लग गई! बानो के हाथ से स्कूल की कापी छीनकर पुरजे-पुरजे कर दी और लड़की की चोटी पकड़कर घसीटती हुई अपने कमरे में ले गई और वहीं छपरखट का पाया उठाकर उसके हाथों को नीचे दबाकर खुद छपरखट पर चढ़ बैठी और कहती रही कि तू जब तक माफ़ी नहीं मांगेगी, नाक नहीं रगड़ेगी, मैं तुझे नहीं छोड़ूंगी। पर बानो भी हठ की बड़ी ही पक्की थी। दांत भींचे रही; न रोई, न सिसकी, न माफ़ी मांगी। जब खानम का बच्चा रोया, तो वह खुद ही उठी। मैं बरामदे की चिक में से यह सब देख रहा था। मेरा बस नहीं चलता था कि जाकर खानम को जान से मार दूं। जब उस कमबख्त को कमरे के बाहर जाते देखा, तब जान में जान आई। पर अब बानो के हाथों में इतनी ताक़त भी नहीं रही कि खुद पाए उठा सके। यह देखकर मैं खानम से डरता-डरता कमरे में गया और पलंग का पाया उठाया। उस वक़्त बानो की आंखों का हाल क्या बयान करूं, सरकार! ऐसी लगती थी, जैसे कोई घायल हिरनी, जिसे किसीने क़साई के हाथों क़त्ल होने से बचा लिया हो। देखते-ही-देखते अब उन आंखों में आंसू उमड़ आए और फिर तो मैं क्या देखता हूं कि वह मेरे

कंधे पर सिर रखे सिसकियां भर रही है। आप ही बताइए, ऐसे मौक़े पर कोई करे भी, तो क्या करे? मेरा तो सांस ऊपर-का-ऊपर, नीचे-का-नीचे रह गया। "छोटी बीबी, क्या कर रही हो? खानम देख लेगी, तो खाल उधेड़ देगी," मैंने आहिस्ता से कहा। और फिर जैसे ही दीवार पर लटकी हुई घड़ी ने साढ़े नौ का घंटा बजाया, मैंने कहा, "स्कूल जाने का वक्त हो गया!" और स्कूल का नाम सुनकर बानो की सिसकियां थम गईं और मेरे गीले कंधे से सिर उठा उसने कहा, "चल ममदू, मेरी किताबें उठा। आज तो मेरे हाथों में क़लम पकड़ने की ताक़त भी नहीं रही।"

उस दिन बानो स्कूल जाने के लिए घर से निकली, तो मैंने देखा कि बुरक़े के अंदर उसने एक पोटली-सी छिपाकर बग़ल में दबाई हुई है। स्कूल के रास्ते में बानो ने हमेशा की तरह नक़ाब उलट दी। रास्ता पगडंडी-पगडंडी खेतों में से जाता था। इधर-उधर देखकर वह बोली, "ममदू, यों तो मैं मर जाऊंगी।"

मैंने कहा, "हां, छोटी बीबी, यह खानम बड़ी ज़ालिम है।"

"फिर?" और यह कहकर उसने मेरी तरफ़ यों नज़र भरकर देखा कि मेरा मुंह घबराहट से लाल हो गया।

"तहसीलदारसाहब से क्यों नहीं शिकायत करती? वह तुम्हारे बाप हैं आख़िर।"

"अब्बा से शिकायत की, तो यह डाइन मुझे जान से ही मार डालेगी। और फिर अब्बा मेरी बात क्यों मानने लगे? तुमने देखा नहीं, उनके सामने कितनी चिकनी-चुपड़ी बातें करती है?"

"फिर!" इस बार मैंने यह सवाल किया।

वह बोली—मेरी आंखों में आंखें डालकर, "चल, ममदू, कहीं भाग चलें। मेरे पास थोड़ा-सा जेवर-गहना है। तीस-चालीस रुपए भी मैंने बचाकर रख छोड़े हैं।"

अमीर छोकरियां अपने नौकरों के साथ भाग जाती हैं, ऐसे क़िस्से मैंने सुने ज़रूर थे, मगर मैं समझता था कि ये बातें क़िस्से-कहानियों में

हुआ करती है। अब आनी की जबान से खुद यह सुनकर मेरा तो यह हाल हुआ, सरकार, कि काटो तो लहू नहीं बदन में। सिर से पैर तक थरथर कांपने लगा। कोई जवाब ही न बन पड़ा। ऐसा लगा, जैसे दिल के दो टुकड़े हो गए हों। एक दिल कहता था, "अबे ममदू, तेरी क़िस्मत जाग गई है। ऐसा मौक़ा फिर हाथ न आएगा। जरा लौंडिया का जोबन तो देख, और उन जुलाहों की काली-कलूटी लौंडियों से मुक़ाबिला तो कर, जिनसे तेरी मां तेरी क़िस्मत फोड़नेवाली है। और वह खुद कह रही है कि जेवर-गहने भी हैं। अबे, ऐश करेगा, ऐश!" पर, सरकार, दूसरे दिल ने कहा, "अपनी औक़ात मत भूल! तू ममदू है, ममदू—बुंदू जुलाहे का लौंडा, तहसीलदारसाहब का नौकर! ऐसी-वैसी कोई बात करेगा, तो इतने जूते पड़ेंगे कि सिर पर एक बाल न रहेगा।"

वह तो खैर हुई, सरकार, कि इतने में सामने से स्कूल का कोई मास्टर आता हुआ नजर आ गया और उसने झट से नक़ाब गिरा दी। फिर आहिस्ता से मुझसे बोली, "छुट्टी चार बजे होगी, पर तू तीन बजे ही तांगा लेकर आ जाइयो। साढ़े तीन बजे कलकत्ता मेल जाती है, बस, आज मैं घर वापस न जाऊंगी।"

मास्टर पास से गुजर गया, तो मैंने चुपके से कहा, "बीबी, ऐसी बातें मत करो। तहसीलदारसाहब को पता चलेगा, तो मेरी खाल खिंचवा लेंगे।"

वह बोली, "अरे, तू मर्द होकर डरता है?" और फिर बुरक़े में से एक हलकी-सी सिसकी की आवाज आई। "ममदू, अगर तू तीन बजे तांगा लेकर न आया, तो मेरा खून तेरी गर्दन पर होगा।"

बस, यह कहा और झट से वह तो स्कूल के अंदर चली गई और मैं वहीं दरवाजे के सामने खड़ा-का-खड़ा रह गया। ऐसा लगा, जैसे मुझ पर बिजली गिरी हो। आप ही बताइए, सरकार, करता तो क्या

करता ? एक तरफ़ तहसीलदारसाहब के हंटर का डर, दूसरी तरफ बानो की जान का सवाल ! न जाने कितनी देर तक तो मैं वहीं स्कूल के दरवाज़े के सामने खड़ा रहा। फिर वहां से वापस हुआ, तो सीधी पगडंडी से भटककर कितनी ही देर तक खेतों मे भटकता रहा।

जब मैं बंगले पर वापस पहुंचा तो बारह बज रहे थे और खानम गुस्से मे आपे से बाहर हो रही थी। अभी मैंने दरवाज़े मे कदम ही धरा था कि गालियो-कोसनो की बौछार शुरू हो गई, "कहां था अब तक तू, हरामज़ादे ? घर का सारा काम यू ही पड़ा है और तू वाही-तबाही फिर रहा है। क्यो रे, जवाब क्यो नहीं देता ? आखिर तू था कहां ?" और जब मेरी ज़बान से एक शब्द न निकला, तो आंखों से आग बरसाती हुई वह मेरी तरफ बढ़ी, "अरे, बोलता क्यों नहीं ? गूगा हो गया क्या ?" यह कहकर उसने मेरा हाथ पकड़कर मुझे झंझोड़ा। पर जैसे ही उसने मेरी बांहो को छुआ, उसकी चीख निकल गई, "अरे, तुझे तो तेज़ बुखार चढ़ा हुआ है। कमबख्त कहीं प्लेग तो नहीं है ? घर में आज ही एक मरा हुआ चूहा निकला है।" और यह कहकर उसने मेरी तरफ ऐसे देखा, जैसे मैं ही वह मरा हुआ चूहा था और फौरन जाकर कार्बोलिक साबुन से हाथ धोने लगी कि कहीं बीमारी की छूत न लग गई हो।

तो, सरकार, खुदा जो कुछ भी करता है, बंदे की भलाई के लिए ही करता है। मुझे प्लेग तो नहीं हुआ, पर मलेरिया बुखार जो उस दिन चढ़ा, तो उसने एक महीने तक जान न छोड़ी। मैं अधमुआ तो हो गया, अगर तहसीलदारसाहब के हंटरों से मेरी चमड़ी बच गई। खानम ने तो उसी वक्त मुझे चपरासी के साथ घर भिजवा दिया था और कह दिया था कि बस, अब यहां आने की ज़रूरत नहीं, मुझे ऐसे नौकर नहीं चाहिएं, जो रोज बीमार रहते हो। घर पहुचते-पहुचते मुझे तो सरसाम का दौरा पड़ गया और वह सरदी चढ़ी कि मां ने घर भर की रज़ाइयां, कंबल, गुदड़े मेरे ऊपर डाल दिए, फिर भी कंपकंपी न गई। पर उस बुखार की हालत मे भी, सरकार, बानो का खयाल मेरे दिल से न

[illegible] नहीं मिलाता रहा, "छोटी [illegible] मैं [illegible] आऊंगा।" यहां तक कि [illegible] मुझे झंझोड़कर उठा दिया, "अबे, क्या [illegible] रहा है? कहीं तुम्हारा दिमाग तो नहीं [illegible] गई ?"

महीने-भर के बाद जब [illegible] मालूम हुआ, तो सुना कि तहसीलदार कुदरतुल्ला खां की तो सहारनपुर बदली हो गई है, उनकी जगह कोई और तहसीलदार आया है। फिर यह भी सुनने में आया कि खांसाहब की तरक्की हो गई है और अब वह डिप्टी-कलक्टर बना दिए गए हैं। डिप्टी-कलक्टर भी बड़ा हाकिम होता है, सरकार, तनख्वाह काफी मिलती है। तभी तो खांसाहब ने सहारनपुर जाते ही मोटर भी ले ली, ड्राइवर भी रख लिया। अब आप पूछेंगे, अबे, तुझे कैसे पता चला कि उन्होंने मोटर ले ली और ड्राइवर रख लिया? तो बात यह है, सरकार, कि झगड़ा होने के दो-चार महीने बाद मैं लाला गिरधारीमल आढ़ती की गल्ले की दुकान पर अनाज की बोरियां ढोने पर नौकर हो गया था। एक दिन मैंने क्या देखा कि लाला से कोई सहारनपुर के जमींदार ठाकुर नवावअली जो मिलने आए, तो कहने लगे, "लाला, सुना तुमने! वह तुम्हारे यहां जो तहसीलदार क़ुदरतुल्ला खां थे न…"

लाला बोला, "हां हां, वह तो अब तुम्हारे यहां डिप्टी-कलक्टर लगे हुए हैं। अब तो सुना है, बड़े ठाट हैं। मोटर भी रख ली है।"

ठाकुर नवावअली बोले, "अरे, लाला, यह मोटर ही की तो बरकत है! मोटर की और नई तालीम की!"

यह बात मेरी समझ में नहीं आई। लाला भी बोला, "ठाकुर-साहब, क्या कह रहे हैं?"

ठाकुर साहब ने कहा, "अरे लाला, कह यह रहा हूं कि खां-साहब क़ुदरतुल्ला खां, डिप्टी-कलक्टर, की लौंडिया उनके ड्राइवर के साथ भाग गई।"

मैंने अपने दिल को लाख समझाया कि अबे, तुझे तो खुश होना चाहिए; अब साहब के हंटर उस साले ड्राइवर, की पीठ पर पड़ेंगे, तू तो साफ़ बच गया। मगर झूठ क्यों बोलूं, सरकार, सच्ची बात यह है कि दिन भर मुझसे ठीक काम न हो सका और उस रात जब मां ने रोज़ की तरह फिर बूढ़ी जुलाही की शीरो से मेरे ब्याह की बात छेड़ी, तो मैंने भी कह दिया, "अच्छा मां, जैसी तेरी मरज़ी !"

संतोष अजब चीज़ है सरकार। इन्सान अपनी किस्मत पर सब्र-शुक्र करना चाहे, तो फिर यही फुटपाथ के पत्थर भी मखमली गद्दा बन जाते हैं और अंधेरी रात के अंधेरे में भेंगी शीरी जुलाही भी रानी-जैसी सुंदर दिखलाई देती है। साल भी नहीं हुआ था कि शीरो ने एक बच्चा जन दिया। अगले बरस एक बच्ची। फिर तो, सरकार नंबर लग गया ! छः बरस में पूरे पांच बच्चे ! तीन लड़कियां, दो लौंडे। पर खुदा की मरज़ी में किसको चारा है ? औलाद भी उसीकी देन है, जब चाहे वापस ले ले। एक बच्चा तो पैदा होते ही मर गया, और एक लौंडिया दो बरस की होकर निमोनिए से हलाक हो गई। अब एक लौंडा और दो लौंडिया रह गईं, पर अपने लिए इतनी औलाद को पालना भी मुश्किल था। घर का सारा बोझ अब मुझ पर ही था। बाबा की कमर तो खाट से लग गई थी और मां को आंखों से सुझाई देना बहुत कम हो गया था। बेचारी दिन में भी टामकटोइया मारती थी। मेरा बड़ा भाई दस साल पहले बंबई जो गया, तो फिर लौटा नहीं था; न कोई ख़त ही भेजा, न रुपया। पहले सुना था, किसी फिल्म कंपनी में चौकीदार है, बड़ी-बड़ी खूबसूरत एक्ट्रेसों की मोटरों के दरवाज़े खोलता है...मेरा भी कई बार जी चाहता कि भाई के पास चला जाऊं, ज़रा बंबई, कलकत्ते की सैर करूं। मगर घरवालों को किस पर छोड़ूं ? सो इसी सोच-विचार में कई बरस गुज़र गए और हम मुज़फ़्फ़रनगर ही में मेहनत-मजदूरी पर संतोष करते रहे।

फिर खुदा का करना ऐसा हुआ कि अपना भी कलकत्ते जाने का एक मौका निकल आया। हुआ यह कि अपने मुहल्ले में एक नन्हा,

[illegible] कि कलकत्ता पहुंचते ही किसी काम ढूंढ़ने गया [illegible] तो देखते हैं कि बिलकुल जंटल- [illegible] को कमीज, कानों में सोने के बटन, [illegible] कलकत्ता का यार था। मैंने कहा, [illegible] मिल गया ?" बोला, "हम तो [illegible] का, मानो को कीमिया बनाने का, [illegible] बताया कि उसने रेल में सोडा- [illegible] इसमें दो-ढाई सौ महीने की [illegible] "और अगर महीना तो अपने नौकरों [illegible] सोडा-लेमन-बरफ़ की आवाज लगाते [illegible] मुफ़्त करते हैं, वह अलग !" [illegible] । मैंने कहा, "भैया रहमत, एक [illegible] !"

[illegible] में भी कलकत्ते पहुंच ही [illegible] देखी थी, कलकत्ता देखकर तो [illegible] चौड़ी साफ़ सड़कें, ये मोटरें, बसें, दुकानें ! [illegible] ? सोचा, रहमत के सोडा-लेमन पर [illegible] दिन और आज का दिन—पंद्रह बरस [illegible] से बाहर कदम नहीं धरा।

पहले तो कई महीने मैं रिक्शा चलाता रहा। दिन में कभी-कभी दो-ढाई रुपए भी मिल जाते थे। मैं समझा, यह काम तो बड़ा अच्छा है, महीने में साठ-सत्तर रुपए मिल जाते हैं। मजदूरों की बस्ती में एक कोठरी ले ली थी, दस रुपए उसका किराया देता था। कभी-कभी दस-पंद्रह बीबी को घर भी भेज देता था। मगर ईमान की बात यह है कि दूसरे साल के बाद मैंने कुछ नहीं भेजा। यह भी पता नहीं कि उस पर क्या गुजरी। जवान आदमी था, सरकार, और फिर कलकत्ते में जहां रुपए-दो-रुपए में सोनागाची में रोज नई बीबी मिल जाती है, तो फिर हजार मील दूर एक भैंगी बदसूरत बीबी को रुपया भेजना भी तो

ड़ा मुश्किल होता है। ऊपर से दारू पीने की आदत भी पड़ गई ी, सरकार। आप कहेंगे तो कि यह आदमी बड़ा आवारा-बदमाश है, गर असल बात यह थी कि दिन भर गधे की तरह रिक्शा खींचने े बाद शाम को गम गलत करने के लिए थोड़ी दारू जरूर चाहिए। ौर फिर दारू पीने के बाद न जाने कैसे पैर आप-से-आप ही सोनागाची ी तरफ़ चल पड़ते थे।

हां, तो साल भर रिक्शा चलाया। कोई सौ-सवा-सौ रुपए तो ाड़े वक्त के लिए जमा भी कर लिए, पर यह पता नहीं था कि आड़ा क्त इतनी जल्दी आ पहुंचेगा। बरसात के दिनों में भीगकर बुख़ार ढ़ा, बुखार से निमोनिया हो गया। डाक्टर ने कहा, "रिक्शा खींचते-ींचते फेफड़े कमज़ोर हो गए हैं। यह काम छोड़ दो!" पूरे डेढ़ महीने खाट पर पड़ा रहा। जब बुखार ने पीछा छोड़ा, तो बदन में इतनी ताक़त नहीं थी कि रिक्शा चला सकूं। जमा-जत्था जो कुछ था, वह खत्म हो चुका था, फिर भी मैंने अल्लाह का शुक्र अदा किया कि निमोनिया से मरा नहीं। सोचा, ज़िंदा तो हूं। लानत भेजो रिक्शा पर, चलो कोई और काम करेंगे। कलकत्ता शहर में जहां ़ुदा तीस लाख को रोज़ी देता है, क्या मुझे ही नहीं देगा? अल्लाह पर भरोसा किए बैठा रहा।

मेरे बराबरवाली कोठरी में अपनी ही तरफ के कई मजदूर रहते थे। एक तो हरनाम था; बुलंदशहर का ठाकुर था, मगर बाप ने सारी जायदाद शराब पी-पीकर उड़ा दी थी। बेटे को पढ़ाया-लिखाया नहीं, सो वह अब कारखाने में मजदूरी करता था। एक बनारस का चमार था, मधू; एक पीलीभीत का मुसलमान था, रहमत खां। मज़ा यह कि तीनों में गहरी दोस्ती थी और साथ ही रहते थे। मैंने एक बार अकेले में रहमत खां से कहा भी कि तुम इन काफ़िरों के साथ रहते हो, ईमान-धरम का भी कुछ खयाल है? वह गाली देकर बोला, "अरे, ईमान-धरम की ऐसी-तैसी! हमारा धरम तो मजदूरी है, मजदूरी!"

उन तीनों ने मुझसे कहा, "चल, तुझे अपने कारखाने में नौकर

करवाए देते हैं। दो रुपए रोज मजदूरी के मिलेंगे।" मैंने सोचा, चलो अच्छा है। रिक्शा खींचकर फेफड़े खोखले करने से तो कारखाने की मजदूरी अच्छी रहेगी। अगले दिन वे मुझे अपने साथ कारखाने में ले गए, जहां पटसन की बुनाई होती थी और मजदूरों के ठेकेदार को, जिसे सब सरदार-सरदार कहते थे, मेरी तरफ़ से पांच रुपए रिश्वत के भी दे दिए। पर मुझे नौकरी न मिली। वीविंग-मास्टर बोला, "काम आजकल मंदा है, इसलिए हम तो पहले ही बहुत-से मजदूरों को छुट्टी देने की सोच रहे हैं। नया आदमी कैसे रख सकते हैं?" और मेरी तरफ़ इशारा करके बोला, "फिर इसे हमारे काम का कोई तजुरबा भी नहीं है। कितने ही दिन तो इसे काम सीखने में लग जाएंगे।"

मैं वापस आ गया और फिर रिक्शावाले मालिक के पास जाने की सोचने लगा। पर खुदा का करना क्या हुआ कि इसी महीने उस कारखाने में हड़ताल हो गई। हुआ यह कि मालिकों ने कहा, "बाज़ार में मंदी होने की वजह से हमें या तो बहुत से मजदूरों को छुट्टी देनी पड़ेगी या उनकी पगार कम करनी पड़ेगी; इसलिए हमने दो रुपए की बजाए मजदूरी घटाकर डेढ़ रुपया करने का फ़ैसला कर लिया है।" मजदूरों ने जब सुना, तो उनमें खलबली मच गई। हड़ताल की तैयारी होने लगी। मैंने रहमत खां और मंगू, दोनों को हड़ताल की बातें करते सुना, तो बोला, "तुम लोग पागल हो गए हो। अरे भाई, आठ आने के लालच में आकर डेढ़ रुपए रोज की आमदनी पर भी लात मार रहे हो? जो मिलता है, उसी पर संतोष करो। खुदा की मरजी होगी, तो मजदूरी फिर बढ़ जाएगी।" मगर उन दोनों पर तो हड़ताल का भूत सवार था। रहमत खां बोला, "इस वक़्त हमने चुपचाप पगार कटवा ली, तो ये मालिक कल हमारे सीने पर सवार हो जाएंगे, सीने पर!" और मंगू एक मोटी-सी गाली देकर बोला, "अगर बाज़ार में मंदी हो रही है, तो यह साला मालिक अपनी पांच मोटरों में से दो-चार क्यों नहीं बेच देता? साले ने तीन-तीन तो औरतें रख छोड़ी हैं, जिनमें से एक विलायती मेम भी है।"

बोला, "क्यों मगदू, तेरे यहां आ जाऊं ? कोठरी का सारा क़िराया आज से मैं दे दिया करूंगा।"

सरकार, अंधा क्या चाहे, दो आंखें, मैं ठहरा बेकार। मुझे तो पहले ही से चिंता घेरे थी कि हर महीने किराया कैसे दूंगा ? सो मैंने उससे कहा, "तू बिला खटके यहां आजा, हरनाम ! मैं नहीं डरता किसी-से।" यह जो कहते हैं न कि कर भला, होगा भला, सो वही हुआ। हरनाम को रहने के लिए अपनी कोठरी में जगह दे दी और उसने अगले दिन ही मुझे कारखाने में नौकर करवा दिया। हड़ताल की वजह से मालिक हर किसीको रखने के लिए तैयार थे, चाहे उसे काम आता हो या नहीं। बस, दो हाथ और दो टांगें होनी चाहिएं। सो मैं भी डेढ़ रुपए रोज़ पर नौकर रख लिया गया। ऊपर से रुपया रोज़ 'स्ट्राइक-अलाउंस' का मिलता था और मिलना भी चाहिए था; हम पचास-साठ आदमी अपनी जान पर खेलकर कारखाना चला रहे थे। रोज़ हमें गालियां और धमकियां सुननी पड़ती थीं। बस्ती के दूसरे मज़दूरों ने हमारा हुक्का-पानी बंद कर दिया था, दो-एक बार ईंट-पत्थर भी हम पर फेंके गए, पर मैंने कहा, "जो भी हो, हड़ताल करके भूखा मरने से यों मरना बेहतर होगा।"

हां, तो मैं कारखाने में होने को तो हो गया, मगर काम मुझे आता ही नहीं था। ईमान की बात यह है कि हरनाम ने वीविंग मास्टर से झूठ कह दिया था कि मैंने इसे काम सिखा दिया है, अब यह एक मशीन को संभाल सकता है। कारखानेवालों को उन दिनों इस बात की बड़ी चिंता थी कि ज्यादा-से-ज्यादा मशीनों को किसी-न-किसी तरह चालू रखें, ताकि अखबारों में यह ऐलान कर सकें कि हड़ताल फ़ेल हो गई है और कारखाने में काम वैसे-का-वैसा ही हो रहा है। हरनाम ने मुझसे कह रखा था कि कुछ भी हो, तू यही जाहिर कीजिओ कि मैं सब कुछ जानता हूं। वैसे मेरी मशीन उसके पास ही थी। मैं बराबर उसको देखता रहता और जो वह करता, वही मैं करने लगता। उसने बटन दबाया, मैंने भी दबा दिया। उसने तेल की कुप्पी लेकर

पुर्ज़ों में तेल दिया, मैंने भी यही किया। उसने मशीन तेज़ की, मैंने भी की। तीन दिन तो मैंने भी इसी तरह गुज़ार दिए। पगार तो हफ़्ते-के-हफ़्ते मिलनेवाली थी, मगर 'स्ट्राइक-अलाउंस' का रुपया रोज़-का-रोज़ मिल जाता था। मैंने सोचा, अपनी बला से—स्ट्राइक उम्र-भर चले…।

इतने में मुझे मशीन के काम का थोड़ा-बहुत अंदाज़ा भी हो गया था—कोई ख़ास मुश्किल नहीं था। काम तो सारा मशीन करती थी, हमें तो सिर्फ़ बटन दबाकर मशीन चालू करना और उसकी देखभाल करनी होती थी। चौथे दिन हरनाम की मशीन का कोई पुर्ज़ा बिगड़ गया और उसे किसी दूसरी मशीन पर लगा दिया गया। जाते-जाते उसने मेरे कान में धीरे से कहा, "क्यों ममदू, संभाल लेगा न?" मैंने कहा, "तू चिंता न कर। इसमें कौनसे हाथी-घोड़े लगते हैं!" फिर भी वह जाते-जाते लौटकर आया और कहने लगा, "ज़रा हाथ-पांव संभाल कर काम कीजिओ।"

हां, तो वह दूसरी मशीन पर चला गया। अब उसकी मशीन तो और कितनी ही मशीनों की तरह बेकार खड़ी थी, मगर मेरी मशीन खटाखट काम कर रही थी।

खटाखट, खटाखट, मशीन चली जा रही थी और मैं ख़ुदा की कुदरत पर अश-अश कर रहा था कि वाह-वाह, इन विलायतवालों को क्या अक़्ल दी है! इन्सानों का काम मशीनों से लेते हैं। जब हम कंबल बुनते थे, तो मेरा बाप ऊन को धो और धुनकर उसमें से मैल निकालता था, फिर मेरी मां चरखे पर ऊन कातती थी, फिर हम सब भाई ताना तैयार करते थे, फिर करघे पर मेरा बाप कंबल बुनता था और इस तरह हम सबकी कई दिन की मेहनत के बाद दो गज़ का कंबल तैयार होता था। और यहां यही सब काम मशीनें कर रही थीं। कच्चे सन का धागा आप-से-आप काता जा रहा था, ताना-बाना हो रहा था, कपड़ा बुना जा रहा था, लपेटा जा रहा था। और कितनी तेज़ी के साथ! मेरा बाप और मां और सब भाई और पड़ोसी, बल्कि मुज़फ़्फ़र-नगर के सारे जुलाहे मिलकर एक महीने में इतना कपड़ा नहीं बुन सकते

में, जितना यह मशीन एक घंटे में बुन रही थी। वाह-वाह! सुबहान तेरी कुदरत! अब इस कपड़े की बोरियां बनेंगी, जिनमें धान और गेहूं और दालें और मिर्चें और नमक भरकर दूसरे मुल्कों को भेजा जाएगा।

खटाखट, खटाखट, मशीन चली जा रही थी। मैंने बिजली की फिरकी घुमाकर मशीन की रफ्तार और तेज कर दी। इस तेज रफ्तार में मुझे मजा आ रहा था। कपड़ा अब और तेजी से बुना जा रहा था और इसी तेजी से मेरा दिमाग काम कर रहा था। मैं सोच रहा था, यह टाट किस देश की सैर करेगा? कितना अच्छा होता कि इसी कपड़े में लिपटकर मैं भी…

खटाखट-खट, खटाखट-खट, मशीन के गीत में मुझे एक बेसुरी-सी आवाज सुनाई दी। सामने देखा, तो एक जगह से ताने का तार टूट गया था। धागे की नली इधर-से-उधर बेकार घूम रही थी, मगर बुनाई नहीं हो रही थी। हमारे करघे पर जब कभी ऊन का धागा टूट जाता था, तो मेरा बाप बड़ी फ़ुर्ती और आसानी से टूटे हुए सिरे को एक-दूसरे के साथ मिलाकर एक मरोड़ी दे देता था। बस, वे फिर जुड़ जाते और ताने-बाने का सिलसिला फिर जारी हो जाता। एकदम मेरे दिमाग़ में भी यही आया कि ममदू, तू भी यही कर। और यह ज़रा भी न सोचा कि यह बिजली से चलनेवाली मशीन है, बुंदू जुलाहे का करघा नहीं है। बिना मशीन को बंद किए मैंने हाथ बढ़ाकर टूटे हुए तारों के सिरे पकड़ने चाहे, मगर मेरी बांहें छोटी थीं और मशीन लंबी थी। एड़ियां उठाकर आगे को झुकना पड़ा। खटाखट-खट, खटाखट-खट, मशीन चली जा रही थी। जैसे ही धागे का टूटा सिरा मेरे हाथ में आया, मेरे पांव ज़मीन से उठ गए और मैं मुंह के बल मशीन पर तने हुए कपड़े पर आ रहा। खटाखट-खट खटाखट-खट, मशीन चल रही थी, कपड़े को और उसके साथ मुझे अंदर घसीट रही थी। कपड़ा लोहे के रोलर पर आ रहा था और मैं मशीन के फ़ौलादी जबड़े की तरफ़ खिंचा चला जा रहा था। उस वक़्त तो सरकार, मुझे अपनी मौत सामने खड़ी नज़र आ गई। मरता क्या न करता, हाथ-पांव मारे, मगर कपड़े के झोल में

मैं इतना उलझ गया था कि किसी तरह से बैठने की सूरत न निकली। और एक बार जो मैंने टांगों को जोर से झटका दिया तो बायां पांव उस कमबख्त मशीन के न जाने किस पुर्जे में फंस गया। अब मैं लाख छुड़ाना चाहता हूं, मगर पांव नहीं निकलता। बल्कि उल्टा मैं घिसटता चला जा रहा हूं। मेरे मुंह से चीख निकल गई और कितने ही मजदूर मेरी तरफ दौड़े। वीविंग-मास्टर की आवाज सुनाई दी, "बिजली बंद करो! बिजली बंद करो!!" मगर अभी कोई बटन न दबा पाया था कि खटाक से आवाज आई और मुझे ऐसा महसूस हुआ कि किसी भयानक हाथ ने मेरी टांग के दो टुकड़े कर दिए हैं। और फिर मेरी आंखों में दुनिया अंधेरी हो गई…

जब मुझे होश आया, तो मैं एक खैराती अस्पताल में पड़ा था और मेरी दाहिनी टांग कट चुकी थी। यह देखकर मुझे पहले तो बहुत दुख हुआ, मगर फिर मैंने सोचा, खुदा का शुक्र है, टांग ही गई, जान तो बच गई। और अगर दोनों टांगें ही चली जातीं, तो क्या हो सकता था? आज मैं भी उस लूले टल्लू की तरह बांहों और कूल्हों के सहारे घिसट-घिसटकर चलता!

हां, तो सरकार, पंद्रह दिन के बाद जब मैं उस अस्पताल से निकला, तो मैं लंगड़ा हो चुका था। मेरी जेब में सिर्फ सात रुपए थे। छः रुपए तो हरनाम ने चार दिन की मजदूरी के लाकर दिए थे और एक रुपया मेरे पास पहले का बचा हुआ था। हरनाम ने यह भी बताया था कि उसने वीविंग-मास्टर से बात की थी कि कारखाने की तरफ से मेरी कुछ मदद कर दी जाए, मगर उसने यह कहकर साफ इन्कार कर दिया था कि अनाड़ी मजदूर अगर अपनी भूल से अपनी टांग और हमारी मशीन तोड़ डाले, तो हम इसके जिम्मेदार नहीं हैं। मतलब यह कि मिल-मालिकों की तरफ से हरजाना मिलने की कोई

उम्मीद नहीं थी। खैर, मैंने दिल को समझाया कि ममदू, खुदा तेरे संतोष की परीक्षा ले रहा है, घबरा मत। जब मैं बस्ती आया और गाड़ी से उतरकर दीवार का सहारा लेता हुआ अपनी कोठरी तक पहुंचा, तो रहमत, मंगू और बहुत से मजदूर मुझे देखने आए। थोड़ी देर तो सब चुपचाप खड़े मेरी टूटी टांग को देखते रहे, और उनको इस तरह घूरते देखकर न जाने क्यों मेरे गुस्से का पारा एकदम तेज हो गया और मैं चिल्लाया, "यहां खड़े-खड़े क्या घूरते हो ? क्या पहले कभी एक टांग का आदमी नहीं देखा ? निकलो यहां से !" इस पर वे सब एक-एक करके चले गए, पर रहमत वहीं खड़ा रहा। फिर धीरे से बोला, "ममदू, यह खुदा ने तुझे हड़ताल तोड़ने की सजा दी है !" बस, यह कहा और वहां से चला गया। पर यह सुनकर मुझे जरा भी गुस्सा न आया; सिर्फ सोचा, "कितना बदकिस्मत है यह रहमत, इसे संतोष की क़द्र ही नहीं मालूम। और फिर कौन जानता है, शायद खुदा हड़ताल तोड़नेवालों ही से खुश हो और इसीलिए इतनी सख्त दुर्घटना के बावजूद मेरी जान बच गई। वरना सब हड़ताल तोड़नेवालों की टांगें टूटनी चाहिए थीं।'

हां, तो सरकार, संतोष की परीक्षा में मैं पूरा उतरा। जब रबड़ या लकड़ी की टांग न मिली तो मैंने संतोष की टांग लगवा ली और कबाड़ी के यहां से दो बैसाखियां ले लीं और उस दिन से इनके सहारे ही कूद-फांदकर चल लेता हूं। जब मेहनत-मजदूरी मुमकिन न हुई, भीख मांगना शुरू कर दिया। रोज़ी देनेवाला तो खुदा है, इन्सान तो उसका ज़रिया है। फिर किसीके सामने हाथ फ़ैलाने में कहां की शर्म ? असल में तो हम खुदा के सामने हाथ फैलाते हैं ! आप यह सुनकर हैरान होंगे, सरकार, कि भीख मांगकर डेढ़-दो रुपए रोज से ज्यादा ही कमा लेता हूं। फिर कारखाने में जान खपाने से हासिल ? और हां, जब हरनाम ब्याह करके बीवी ले आया और उसने मुझे मेरी ही कोठरी से निकाल दिया, तब से मैंने यहां सड़क की पटरी पर अपना घर बना लिया। छतें और फ़र्श, बंगले और कोठियां, पलंग और कुरसियां—ये

सब तो बेकार के चोंचले हैं। संतोष की छत और संतोष का फ़र्श हो, तो सड़क का किनारा भी महल बन जाता है।

कितने ही महीने मैंने संतोष से भीख मांगकर बिता दिए। मुझे इस फकीरी की ज़िंदगी में मज़ा आने लगा। न कोई घर-बार के झंझट, न मेहनत, न मजदूरी, न मालिक मकान का किराया देना, न चूल्हे-चक्की का बखेड़ा। फकीर की ज़िंदगी ही असल में आज़ाद ज़िंदगी है। मैं और तमाम बंधनों, ज़रूरतों और झगड़ों से तो आज़ाद हो गया, पर कटी हुई टांग होने पर भी एक शैतानी ज़रूरत अब भी जाड़े की रातों को तंग करती थी। जब मेरे पास पांच-दस रुपए जमा हो जाते थे, मैं रात को चुपके से सोनागाछी पहुंच जाता था। आप जानते ही हैं, सरकार, इस बाज़ार में अमीर-ग़रीब, नवाब-फकीर सब बराबर हैं! जिसकी जेब में दाम हों, वह जो माल चाहे ख़रीद सकता है—चाहे लंगड़ा-लूला फ़कीर ही क्यों न हो!

जाड़े की एक रात का ज़िक्र है कि मैं बैसाखियों का सहारा लेता हुआ सोनागाछी में एक कोठे पर चढ़ गया। यह जगह मेरे लिए नई नहीं थी, अक्सर मैं यहीं आया करता था। दो रुपए में मामला हो जाता था। मगर उस रात को बूढ़ी नायिका मुझे देखते ही हंसकर बोली, "क्यों रे लंगड़े! फिर यहां आ गया तू? पर आज दो रुपए से काम नहीं चलेगा। गुदड़ी में पांच रुपए हैं, तो ठीक है, नहीं तो रास्ता पकड़ो।" उन दिनों मुझे भीख में अच्छी रकम मिल रही थी। चालीस के नोट तो मैंने अपनी गुदड़ी के अंदर सी रखे थे और सात-आठ रुपए के पैसे उस वक्त भी मेरे पास थे। मैंने कहा, "मैं लंगड़ा हूं, तो क्या हुआ! पैसा मेरा भी दो टांग से चलता है। माल दिखाओ, पांच रुपए भी मिल जाएंगे।"

पर वह बड़ी घाघ थी। सौदिया नहीं दिखाई। मुझसे पांच रुपए लेकर मुझे अंदर के कमरे में ढकेल दिया। अंदर जाकर मैंने बैसाखियां तो फेंक दीं और पलंग पर बैठ गया। सौदिया कोई अजनबी नहीं मालूम होती थी, सिर झुकाए बैठी थी।

मानता था, उसका [illegible]

मैंने कहा, "मेरी जान, सूरत तो दिखाओ ! मैं लंगड़ा हूं, पर तुम्हें खुश कर दूंगा ।"

मगर उसने जो घूंघट उठाया, तो यक़ीन मानिए, सरकार, मेरे पांव तले की ज़मीन निकल गई ।

वह चिल्लाई, "ममदू !"

और मैं चिल्लाया, "छोटी बीबी, तुम यहां ?"

वह बोली, "हां, ममदू, यह मेरी क़िस्मत का फेर है । तुम्हारी टांग क्या हुई ?"

मैंने कहा, "यह मेरी क़िस्मत का फेर है !"

वह रो रही थी । मैंने दिलासा देने की कोशिश की, तो बानो मुझसे लिपटकर सिसकियां भरने लगी । मैंने ध्यान से देखा, इन तीन बरसों में उसका वह रंग-रूप ही न रहा था । बीस-इक्कीस बरस की उम्र में तीस-पैंतीस की लगती थी । आंखों के गिर्द गड्ढे, पाउडर-सुर्खी के होते हुए भी रंगत पीली । दुबली इतनी हो गई थी कि बांहों की हड्डियां-ही-हड्डियां रह गई थीं ।

जब आंसू कुछ देर को थमे, तो उसने मुझे अपना हाल बताया । जिस ड्राइवर के साथ वह भागी थी, वह बड़ा बदमाश निकला । कलकत्ते जाकर दो-तीन महीने तो बानो का ज़ेवर बेच-बेचकर खूब ऐश किए, फिर जब गुज़ारे की कोई सूरत न रही, तो उसे कुकर्म पर मजबूर किया और एक रात को उसे एक सेठ के हाथों बेचकर ग़ायब हो गया ।

मैंने कहा, "पर, छोटी बीबी, तुमने पुलिस में क्यों न रपट लिखवाई ? तुम तो पढ़ी-लिखी हो, तहसीलदारसाहब को लिखा होता, वह आकर तुम्हें ले जाते और उस ड्राइवर की चमड़ी उधेड़ देते ।"

वह बोली, "पुलिस में रपट लिखवाती, तो इसके सिवा और क्या होता कि मुझे ज़बरदस्ती वापस घर भेज दिया जाता ? जो कुछ मुझ पर गुज़र चुका था, उसके बाद मैं क्या मुंह लेकर अब्बा के सामने जाती ?"

मतलब यह कि बेचारी बानो एक हाथ से दूसरे हाथ होती हुई अंत में इस घटिया रंडीख़ाने में पहुंची थी, जहां क़िस्मत इस रात मुझे

आई थी। मैंने कहा, "अब तुम कोई चिंता न करो। जब तक ममदू दम है, तुम्हें कोई तकलीफ़ न होने देगा। अब मैं तुम्हें एक मिनट भी इ के नरक में न रहने दूंगा।"

वह आंखें नीची करके बोली, "पर ममदू, मैं बीमार हूं। बहुत बुरी मारी है।"

अब मुझे इन फुंसियों की वजह समझ में आई, जो बानो के चांद-से मुखड़े को दाग़दार बनाए हुए थीं। मगर मैंने कहा, "कोई परवाह हीं है। मैं ही कौनसा छबीला जवान हूं? लंगड़ा फ़क़ीर ही तो हूं। मैं तुम्हारा इलाज कराऊंगा, तुम अच्छी हो जाओगी। मैंने सुना है, अब हर बीमारी का इलाज हो जाता है। चलो मेरे साथ, इसी वक़्त।"

अभी हम यह बातें कर ही रहे थे कि दरवाज़े पर खटखट हुई। मैंने कहा, "आ जाओ।" बूढ़ी नायिका बोली, "अबे ओ, लंगड़े! पांच रुपए दिए हैं, कोई रात भर का ठेका नहीं लिया। दूसरा गाहक इंतज़ार कर रहा है।" पीछे एक भयानक, काला-सा, मोटा-तगड़ा आदमी नशे में झूम रहा था। मैंने एक हाथ से बानो का हाथ पकड़ते हुए और दूसरे हाथ से बैसाखियां उठाते हुए कहा, "यह लड़की मेरे साथ जा रही है। अब यह यहां नहीं रहेगी...।"

इसके बाद न जाने क्या कुछ हुआ, ठीक याद नहीं। शायद नायिका ने उस आदमी को इशारा किया। वह बानो को दबोचने के लिए आगे बढ़ा। बानो की एक चीख़ ज़रूर याद है—ऐसी चीख़, जो पत्थर-दिल को भी मोम कर दे। न जाने कब और कैसे मेरी बैसाखी हवा में उठी और उस शराबी की खोपड़ी पर गिरी। अगले पल में वह ज़मीन पर बेहोश पड़ा था और नायिका चिल्ला रही थी, "ख़ून-ख़ून! कोई आओ, दौड़ो, इस ख़ूनी को पकड़ो!" और बानो डरी आंखों से मुझे देख रही थी और कह रही थी, "ममदू, यह तूने क्या किया?" और मैं कह रहा था, "छोटी बीबी, तुम चिंता न करो। उस दिन मैं वक़्त पर खाना न लाया था, यह उसीकी सज़ा है।"

और सो, वह दिन और आज का दिन। दस बरस क़ैद काटी,

पहलों ही छूटा हूं। अब फिर वही सड़क का किनारा है, वही संतोष का फ़र्श है और संतोष की छत। सुनता हूं, इन दस सालों में एक बहुत बड़ी लड़ाई हो चुकी है। हुई होगी। सुनता हूं, लाखों हिंदू-मुसलमान एक-दूसरे के हाथ मारे गए और इसी कलकत्ते की सड़कों पर खून के दरिया बहे। बहे होंगे। यह भी सुनता हूं कि देश आज़ाद हो गया है। हुआ होगा। मुझे तो पता नहीं। मैं इतना जानता हूं कि भीख अब पहले से भी कम मिलती है और बहुत से रहमदिल बाबू भी जब पास से गुजरते हैं और पैसा देने के लिए जेब में हाथ डालते हैं, तो जेब खाली पाते हैं…

फिर भी मैं खुदा का शुक्र अदा करता हूं, सरकार, कि ज़िंदा हूं। शुक्र अदा करता हूं कि कम-से-कम एक टांग तो है, लल्लू की तरह बिलकुल अपाहिज नहीं हूं। शुक्र अदा करता हूं कि दो रुपए रोज नहीं, तो चार-पांच आने तो भीख में मिल ही जाते हैं और शुक्र अदा करता हूं कि बानो अब तक ज़िंदा है और मेरे पास है…वह बुढ़िया आप देखते हैं न ? सामने बैठी अपने सफ़ेद बालों में से जूएं निकालकर मार रही है। वही बानो है—बानो, जिसकी रंगत कभी ऐसी थी, जैसे मैदा और शहद, और जो कभी काले रेशमी बुरक़े में से मुंह निकालकर मेरी तरफ़ मुस्करा देती, तो ऐसा लगता था, जैसे बदली में से चांद निकल आया हो; जिसकी बड़ी-बड़ी कटोरा-जैसी आंखें थीं और जिसके बालों की भीनी-भीनी खुशबू मस्त करने को काफ़ी थी। अब उसके चेहरे पर झुर्रियां पड़ चुकी हैं, सारा बदन पीप रिसते हुए फोड़े-फुंसियों से पटा पड़ा है और बहुत दिन हुए, उसका दिमाग़ जवाब दे चुका है। अब उसे न बचपन के सुख याद हैं, न जवानी के दुख। न तहसीलदारसाहब, न खानम, न ममदू। दिन-भर बैठी-बैठी जूएं मारती रहती है और आप-ही-आप न जाने क्या बड़बड़ाती रहती है…

मगर शुक्र अल्लाह का, बानो ज़िंदा है और मेरे पास है और मैं उसे देख सकता हूं…

जिसको कहते हैं इश्क़

कई दोस्तों की जुबानी यह शिकायत सुनने में आई कि प्रगति-शील लेखकों की कहानियों में इश्क़-मुहब्बत का पुट बहुत कम हो गया है। जो कहानी पढ़ो, वह खून, पसीने, शराब, कै और पीप से लथपथ नजर आती है। हर तरफ से अगर आहें, कराहें नहीं, तो इन्कलाबी नारे जरूर सुनाई देते हैं। और-तो-और, कृशन चंदर को भी 'पूरे चांद की रात' में किसी दिलकश प्रेम-दृश्य की बजाय 'महालक्ष्मी का पुल' ही नजर आता है। इस्मत का 'रेशमी लिहाफ़' 'कंडल कोर्ट' के नीचे बैठे मोची को गंदी गुदड़ी में बदल चुका है और महेंद्रनाथ ने भी 'ज़िंदगी चांद-सी औरत के सिवा कुछ भी नहीं" वाले दृष्टिकोण से तोबा करली है।

उपेंद्रनाथ अश्क भी गोरी मेमों के बारे में नहीं, 'काले साहब' के बारे में लिख रहे हैं और हमारी बहन चंद्रकिरण सोनरिक्सा कालिज की चंद्रवदना-चचल कुमारियों की बजाय लंगड़ी-लूली नाइनों के बारे में लिखती हैं, जिनकी 'जवान मिट्टी' में भी सुंदरता और रोमान का रंग नहीं मिलता।

यद्यपि मैं खुद 'प्रगतिशील साहित्यकार' कहलाने का किसी तरह भी हकदार नहीं हूं (क्योंकि 'प्रगतिशील' मुझे अप्रगतिवादीवादी और जनता-विरोधी मानते हैं और साहित्यकार मुझे सिर्फ पत्रकार समझते हैं), फिर भी मैंने महसूस किया है कि यह शिकायत मुझ पर भी लागू होती है। मैं भी रोमान से दामन बचाने का दोषी हूं। मेरी कहानियों

इसलिए प्रेम-कहानी लिखने से पहले मैंने अपने हीरो और हीरोइन की सृष्टि की। हीरोइन के सुडौल जिस्म को दुनिया की सबसे नरम मिट्टी से बनाया। उसकी आंखों को बंगाल का जादू दिया, रंगत काश्मीर से ली और अंगों का तनाव महाराष्ट्र से लिया। उसको पंजाब का स्वास्थ्य सौंपा और उसके बदन में बंबई की मछेरिनों-जैसा लोच दिया। बालों को घुंघराला बनाया, भवों को कमान-जैसा। होंठों में मिठास भरी और गाल पर एक मनमोहक तिल बनाया। आंखों में मस्ती, सीने में जवानी का उभार और चाल में अल्हड़पन—और इस बेदाग़ सुंदरता को आशा का कवितामय नाम देकर मैंने साहित्यिक रचना के चमत्कार से अपनी हीरोइन में जान डाली और उसके कान में लैला-मजनूं, रोमिओ-जूलियट, हीर-रांझा, सोहनी-महिवाल और देवदास-पार्वती की प्रेम-गाथाओं के गीत गुनगुना दिए।

आशा के प्रेमी का काम करने के लिए मैंने एक नौजवान निर्मल-कुमार की सृष्टि की। उसके बदन को मैंने मज़बूती और सेहत सौंपी, किसी सुंदरी को उठा लेने और अपने चौड़े-चकले सीने से लगा लेने के लिए उसकी बांहों में ताकत दी। उसकी छाती में एक धड़कता हुआ दिल रख दिया और उसके दिमाग़ को उमंगों और अरमानों से भरपूर कर दिया। उसके हाथ में एक बांसुरी दी और बांसुरी को संगीत से सराबोर कर दिया।

आशा और निर्मल।

निर्मल और आशा।

संसार के ऐतिहासिक प्रेमियों के जोड़ों में यह जोड़ा मेरे दिमाग़ की पैदावार था। मैंने सोचा, इन दो प्रेमियों के दिल की हर धड़कन को अपने शब्दों में ढालकर उनकी कहानी को अमर कर दूंगा। जिस तरह लैला-मजनूं और हीर-रांझा का नाम आज तक लिया जाता है, उसी तरह मेरे निर्मल और आशा का नाम भी दुनिया में हमेशा अमर रहेगा। और यह सोचकर मैंने इन दोनों को एक-दूसरे से प्रेम करने के लिए अपनी कल्पना की दुनिया में आज़ाद छोड़ दिया।

पूरे चांद की रात में मैंने उन दोनों की पहली मुलाकात कराई—पूरे चांद की रात, जब आदमी के संवेदनशील हृदय में सोई हुई मुहब्बत को गुदगुदाहट जगाती है। आकाश के चेहरे पर प्रकाश का पाउडर मलती है, खूबसूरती को चार चांद लगा देती है और इश्क को मत-वाला और मदहोश बना देती है। उस समय हवा में कविता हुई होती है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पर [illegible] की बारीक चादर पड़ जाती है और हर तरफ प्रेम के गीत गूंजते सुनाई देते हैं।

और उस रात जब मेरे निर्मल की बांसुरी की तान हवा में गूंजी और आशा उसके जादू-भरे मनमोहक तानों से खिंची हुई अपने घर से बाहर निकल आई, तो मुझे ऐसा लगा कि मेरी कला का क्रियात्मक उद्देश्य पूरा हो चुका है। अब कहानी ये दोनों खुद लिखेंगे। अब आशा निर्मल से पूछेगी, "मुसाफिर, तुम्हारी बांसुरी किसे बुला रही है?" और निर्मल कहेगा, "तुम्हें सुंदरी! और किसे?" और इस परिचय के बाद प्रेम के वादे होंगे, एक-दूसरे की क़समें खाई जाएंगी, जीवन-भर प्यार निभाने की शपथें ली जाएंगी और जैसे-जैसे पूरे चांद की रात ढलती जाएगी, इन दोनों की अमर मुहब्बत जवान होती जाएगी...

मगर आशा ने कहा, "अरे ओ, यह क्या बेवक़्त की रागिनी छेड़ी है! सोने भी देगा या रात-भर बांसुरी ही बजाता रहेगा?"

और निर्मल ने जवाब दिया, "चल-चल! बड़ी महारानी आई कहीं की! देखती नहीं, प्रैक्टिस कर रहा हूं?"

"प्रैक्टिस?" आशा ने अंग्रेजी का मुंह चिढ़ाते हुए कहा, "वह क्या बला है?"

"अरी, रियाज कर रहा हूं बांसुरी बजाने का, नहीं तो बैंड में कैसे काम मिलेगा?"

बैंड का नाम सुनकर आशा की दिलचस्पी जाग उठी। वह बोली,

"अच्छा ! तुम बैंड बजाते हो ? सचमुच ?"

"बैंड नहीं बजाता, बैंड में बांसुरी बजाता हूं।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि पैसे मिलते हैं—सवा रुपया रोज।"

"ढोल क्यों नहीं बजाते ?"

"ढोल बजानेवाले को दो रुपए रोज मिलते हैं, इसलिए ढोल बैंडमास्टर का साला बजाता है।"

मुझे क्रोध आ रहा था कि चांदनी रात बेकार ढलती जा रही है और ये लोग प्रेम-भरी बातें करने की बजाए आने-पैसों का हिसाब लगा रहे हैं। मैंने संगीत के जादू से रोमानी वातावरण पैदा करने के लिए एक बांसुरी निर्मल के होंठो से लगा दी और एक नई फिल्मी-धुन हवा में गूंज गई।

आशा बोली, "मुझे बांसुरी की यह रीं-रीं बिलकुल नहीं भाती।"

"फिर कौनसा बाजा अच्छा लगता है ? हारमोनियम ?"

"ऊं-हूं!"

"फिर क्या ? सारंगी ? सितार ?"

"ऊं-हूं ! मुझे तो ग्रामोफोन अच्छा लगता है—जैसा हमारे बराबर के पड़ोसी थानेदार के घर में है। जो रिकार्ड जी चाहा, चढ़ा लिया !"

"यह नया थानेदार कैसा आदमी है ?"

"अच्छा है बेचारा। जब मांगो, हमें अपना ग्रामोफोन बजाने को दे देता है। उसके पास रेडियो भी तो है।"

"पर थानेदार के पास इतना रुपया कहां से आया ? तनख्वाह तो सौ-सवा-सौ ही मिलती होगी ?"

"पर भगवान ऊपर की आमदनी भी तो दे देता है। तुम्हारे बैंड में ऊपर की आमदनी नहीं होती ?"

"होती है। जब कभी किसीकी शादी में जाते हैं, तो कभी-कभी हर एक को चवन्नी-अठन्नी इनाम भी मिल जाती है।…तुम्हारी शादी हो चुकी है ?"

आशा ने जवाब नहीं दिया, शरमाकर सिर झुका लिया। मगर उस पर बांसुरी का जादू काम कर रहा था और उसका दिल न जाने क्यों जोर-जोर से धड़क रहा था।

"नाराज़ हुई? जाओ, अच्छी बात है।"

आशा ने सिर उठाकर शरारत से निर्मल की आंखों में आंखें डालते हुए पूछा, "हां, अच्छा क्या है इसमें?"

और मैंने सोचा—अब अच्छा मौक़ा है निर्मल को अपने प्रेम का प्रदर्शन करने का।

मगर उसने जवाब दिया, "इसलिए कि जब तेरी शादी होगी और बारात में हमारा बैंड आएगा, तो तेरा दूल्हा मुझे इनाम देगा। इससे ज़्यादा अच्छी बात क्या हो सकती है!"

"चल हट!" आशा ने कहा और भागकर अपने घर लौट गई।

जब निर्मल ने अपने दोस्तों से आशा का जिक्र किया, तो उन्होंने कहा, "अबे, दिमाग खराब हुआ है! उस लौंडिया के बाप को भी देखा है? चावल की ब्लैक मार्केट में हज़ारों कमा रहा है। वह भला बैंडवाले से क्यों आशा की शादी करने लगा?"

"फिर जात-पांत का फ़र्क़ भी तो है! तुम ठहरे राजपूत और वह है बनिया—वह भी जैनी।"

"और हमसे पूछो, तो बुड्ढा लौंडिया की बात कब की पक्की कर चुका है। मैंने तो सुना है, अगले महीने शादी भी होनेवाली है।"

"किसके साथ?"

"यह नया थानेदार जो आया है, उसके साथ।"

"पर वह तो रंडुआ है और बालों में खिज़ाब लगाता है!"

"इससे क्या? थानेदार तो है।"

निर्मल ने एक ठंडी सांस भरी और बांसुरी मुंह से लगाकर 'जिया बेक़रार है, आई बहार है' की लय बजाने लगा। मैंने सोचा, चलो अच्छा है। लैला-मजनूं और हीर-रांझा की तरह मेरी इस प्रेम-कहानी का अंत भी ट्रेजेडी में होगा।

और अगले महीने जब अपने बालों और मूछों में खूब खिजाब लगाकर थानेदार दूल्हा बना और घोड़े पर चढ़, बारात साथ लेकर चला, तो आगे-आगे बेंड 'चल-चल रे नौजवान' की धुन बजा रहा था और निर्मल रोज़ की तरह अपनी बांसुरी बजाने में तन्मय था। उसके चेहरे पर निराशा के बादल छाए हुए थे और वह अपने विचारों में इतना खोया हुआ था कि 'चल-चल रे नौजवान' से भटककर उसकी बांसुरी से 'आंधियां गम की यूं चलीं, बाग उजड़ के रह गया' की लय निकलने लगी। जब छाजन बजानेवाले ने उसे टोका और पूछा, "अरे निर्मल, क्या हो गया है तुझे आज ?" तो वह बोला, "मैं बड़ा परेशान हूं, यार। मां बीमार है और डाक्टर ने नुसखा लिख दिया है महंगा। दवा आती है पौने दो की, और शाम को मिलेगा सिर्फ सवा रुपया। यही सोच रहा था कि बाकी आठ आने कहां से आएंगे ?"

पर मुझे विश्वास था कि निर्मल यह बात सिर्फ टालने के लिए कह रहा है। असल में उसका दिल टूटा हुआ है, आशा के ब्याह की वजह से। और जब बेंडमास्टर ने धुन बदली, तो मैंने सोचा, वाह-वाह ! क्या क्लासिक ट्रेजेडी है कि प्रेमिका की बारात जा रही है और प्रेमी उस बारात में 'झूम-झूम के नाचो आज, गाओ खुशी के गीत' की धुन पर बांसुरी बजा रहा है !

फेरों के समय जब आशा लाल रेशमी साड़ी में लिपटी, जेवरों से लदी-फदी मंडप के नीचे हवन-कुंड के पास लाकर बिठाई गई, तो मुझे विश्वास था कि वह निर्मल के असफल प्रेम की याद करके रो रही होगी। कौन जानता है, जहर खानेवाली होगी ! घूंघट की वजह से चेहरा तो दिखाई न देता था, मगर उसके मेंहदी लगे पैरों पर जब कुछ बूंदें गिरीं, तो इसके सिवा क्या सोचा जा सकता था कि टूटे हुए दिल के टुकड़े हैं, जो आंसुओं की शक्ल में टपक रहे हैं। पर जब उसकी एक

सहेली ने मजाक करते हुए घूंघट उठाया, तो देखा कि कपड़ों और जेवरों की गरमी के कारण आशा को सख्त पसीना आया हुआ है और ये पसीने की बूंदें थीं, जो उसके माथे और गालों से टपक रही थीं। और मेरी हैरानी की हद न रही, जब उसने अपनी सहेली के कान में कहा, "अरी, मेरी यह अंगूठी तो देख, असली हीरा है, असली!"

औरतें भी क्या चीज होती हैं, मैंने सोचा। इस आशा को देखो। वहां वह बेचारा निर्मल अपने टूटे हुए दिल को सम्हाले खून के आंसू रो रहा है और यह कमबख्त उधर हीरे की अंगूठी पाकर फूली नहीं समा रही और यह नहीं समझती कि उसे कुछ सिक्कों के लिए एक बूढ़े, बदसूरत आदमी के हाथ बेच दिया गया है।

फिर जब बाहर जाकर देखा कि दूसरे बैंडवालों के साथ निर्मल भी आराम से बैठा लड्डू खा रहा है (वही लड्डू, जो आशा और थानेदार की शादी की खुशी में बंट रहे थे और जिनकी मिठास में निर्मल की मुहब्बत के लिए जहर-ही-जहर भरा था), तो मेरे अचंभे का कोई ठिकाना न रहा। यही नहीं, बल्कि वह हंसकर कह रहा था, "यार, लड्डू अच्छे हैं!" फिर मैंने सोचा कि शायद यह जहरीली मुस्कान हो—'दिल रो रहा है, लब मुस्करा रहे हैं' कुछ उस तरह की क्लासिक दुख-भरी कहानी। मगर अगले पल थानेदार फेरों से निबटकर अपनी खिजाब लगी मूंछों को ताव देता हुआ बाहर आया और बैंडवालों को आठ-आठ आने इनाम बांटने लगा। जब निर्मल की बारी आई, तो मुझे आशा थी कि वह हरगिज अपने प्रेम के हत्यारे हाथों से भीख स्वीकार न करेगा। संभव है, पैसे फेंककर दूल्हे पर दे मारे। संभव है, कुछ ऐसे कड़वे जले-भुने शब्दों के साथ वापस कर दे कि "जहां आप दुनिया की इतनी बड़ी दौलत समेटे लिए जा रहे हैं, वहां ये आठ आने भी आप ही रखिए!" लेकिन मुश्किल से एक सैकंड की हलकी-सी हिचकिचाहट के बाद निर्मल ने थानेदार के हाथ से चमकती हुई अठन्नी ले ली और सलाम करते हुए कहा, "भगवान आपका सुहाग क़ायम रखे, थानेदार-साहब!" और जब वह चला गया, तो अपने एक दोस्त से बोला,

"चलो भाई, अब मां के लिए बाजार से दवा तो आ जाएगा।"

मैंने सोचा, लानत हो इन घटिया प्रेमियों पर! ये तो रोमियो-जूलियट और सोहनी-महिवाल की परपराओं पर चलना तो एक तरफ, देवदास और पार्वती के कदमों पर भी न चल सके! और इसी पल मैंने अपनी कल्पना की तलवार से उन दोनों को खतम कर दिया और एक नए निर्मल और नई आशा को सिरज दिया।

इस बार मैंने निर्मल और आशा को बगाल में जन्म दिया—सुनहला बगाल! टैगोर की जन्मभूमि! संस्कृति, कला और साहित्य का पालना, जहां कविता बच्चों को घुट्टी में मिलती है, जहां धान के हरे-भरे खेतों में, चौड़े-चकले दरियाओं के किनारे और ताड़ के झुंडों में रोमांस पलते और परवान चढ़ते हैं! एक प्रेम-कहानी के लिए इससे अच्छा वातावरण भला और कहां हो सकता है?

निर्मल और आशा एक ही गांव में पैदा हुए, गांव की गलियों में साथ-साथ खेल-कूदकर बड़े हुए। गांव के दूसरे लड़के-लड़कियों के साथ मिलकर जमींदार के बाग में वे कच्चे-पक्के आम तोड़ते, फिर काई और कमल के फूलों से ढके हुए तालाब में उन्हें धोते और फिर मजे ले-लेकर खाते। कभी-कभी निर्मल आशा के हाथ से आधा ... हुआ आम छीनकर खुद चूसने लगता और फिर उसे आम की खटास में भी एक अजीब मजा आता, जैसे आशा की सारी मिठास ... द्वारा आम के रस में घुल गई हो और वह शरारत-भरी कनखियों से आशा की तरफ देखकर कहता है, "आशा, आम बहुत मीठा है, न?"

और आशा झेंपकर एक कच्ची अमिया निर्मल की तरफ ... कहती, "जा रे, आमी की जानी?" (जा रे, मैं क्या जानू?) ... निर्मल आशा की शरमीली निगाहों में प्यार का पैगाम पा लेता।

बड़े यत्न से मैंने इस निष्कपट प्यार को सींचा, परवान च...

प्रदान किया। इस तरह मैंने उन्हें एक ही जाति में पैदा किया था, गांव भी अलग-अलग थे, ताकि उनकी मुहब्बत को शादी की मंजिल तक पहुंचने में कोई सामाजिक रुकावट सामने न आए। आशा के मां-बाप निर्मल को पसंद करते थे और निर्मल के मां-बाप आशा को। आगे की बात तय रही थी कि…

बरसों की कमी से फसलें जल गईं। रहा-सहा अनाज चोर-बाजारी के सेठों के गोदामों में पहुंच गया। किसानों के गहने-पाते, बरतन-भांड़े, यहां तक कि जमीनें भी महाजन के हाथों गिरवी हो गईं। जब खाने को धान न रहा, तो पत्तों, घास और जड़ों पर गुजारा करने लगे। जब हर किस्म की सब्जी सूख गई, तो सबने गांव छोड़कर शहर जाने का फैसला कर लिया।

मैंने सोचा, मुसीबत ही में प्रेम शिखर पर पहुंचता है। इस आड़े वक्त में निर्मल और आशा की मुहब्बत ही उनको सहारा देगी। भूख में, प्यास में, परदेश में—वे जहां और जिस हाल में होंगे, प्रेम का दीपक उनके जीवन को रोशन रखेगा।

मगर जब से काल पड़ा, निर्मल और आशा और उनके घरवालों के मेल-जोल में वह पहली-सी बात न रही। पहले तो दिन-भर निर्मल बेचारा अपने घरवालों के लिए घास और पत्ते और जंगली बेर तलाश करने न जाने कहां-कहां मारा-मारा फिरता। शाम को जब घर आता, तो भूख और थकन से इतना निढ़ाल कि बस लेटते ही सो जाता। मगर नींद भी ठीक तरह से न आती। भूखे पेट में आंतों का खिचाव सोने न देता। फिर भी कमजोरी के कारण बेहोशी-सी रहती। अजीब-अजीब सपने आते। सपने पहले भी आते थे—आशा के सपने! मगर अब उसके सपनों में गरम-गरम भात के पहाड़ नजर आते, दूध की नदियां और रस-गुल्लों के मीनार! आशा न नजर आती।

उन दिनों वे दोनों अकेले मिल भी जाते, तो कोई ढंग की बात न कर पाते।

"कहो, आशा, कैसी हो?"

"अच्छी हूं।"

"क्या खाते हैं तुम्हारे घरवाले आजकल?"

"जो भी मिल जाता है।"

"सुना है तुमने, सब शहर जाने की बात कर रहे हैं?"

"हां, और क्या हो सकता है।"

एक बार निर्मल की थकी हुई आंखों में एक पल के लिए एक पुरानी चमक जाग उठी और उसने आशा से कहा, "शहर साथ ही चलना। तुम थक जाओगी तो मैं पीठ पर चढ़ा लूंगा।"

और आशा ने जवाब में वही वाक्य दुहराया, "जा रे, आमी को जानी?"

मगर इस बार इन शब्दों में कोई प्यार का संदेश नहीं था; सिर्फ एक अजीब थकी हुई निराशा थी—जैसे अब उसमें इतना सोचने की न ताकत थी, न परवाह कि वह कब और कहां जाएगी और किसके साथ?

और अगले पल निर्मल की थकी आंखों में भी वह पुरानी चमक सो गई और उसके पेट की चुभती हुई भूख फिर जाग उठी।

भूख का कारवां चल पड़ा शहर की तरफ।

गांव छोड़ने के तीसरे दिन ही निर्मल की मां चल बसी। बाप बूढ़ा और बीमार था—वह दूसरे गांववालों से पीछे रह गया और उसके साथ निर्मल भी। कई मील तक निर्मल बाप को पीठ पर लादकर चला। मगर एक रात को, जब उन्होंने पड़ाव किया और सोने के लिए लेटे, तो निर्मल के भूखे पेट से अजीब-अजीब डरावने विचार उठकर उसके दिमाग में आने लगे। बाप बीमार है, उसने सोचा। आज नहीं, तो कल यह जरूर मर जाएगा। मैं इसे कहां-कहां लादे फिरूंगा? इसके कारण मैं काफिले से पिछड़ गया, तो मेरी मौत भी निश्चित है। जैसे ही यह सो जाएगा, मैं यहां से चल दूंगा और काफिलेवालों से जा मिलूंगा।

न जाने आगा किस आग में है? भूख…चाम…धान…भात…

सवेरे जब उसकी आंख खुली, तो उसने देखा कि उसका बाप मरा पड़ा है। आंखें अब तक खुली हुई थीं, जैसे अचंभे से खुली-की-खुली रह गई हों और मन में खुशी भरी आसमान को तक रही थीं। पर निर्मल को ऐसा लगा, जैसे वे उसे घूर रही हैं—हैरानी और अचंभे और खुशी और नफ़रत और प्यार से। और वह वहां से चल पड़ा, जितना तेज भी उसका भूखा शरीर घिसट सकता था—और उसने एक बार भी पीछे मुड़कर न देखा। भय और कमज़ोरी से उसके पैर डगमगा रहे थे।

क़ाफ़िलेवालों तक पहुंचने में उसे दो दिन लगे। इतनी देर में वह सिर्फ़ भूख का पुतला बनकर रह गया था। सारी ज़मीन उसकी कल्पना में एक शानदार गोल रोटी थी। कमज़ोरी अब इतनी हो गई थी कि वह घिसट-घिसटकर ही चल सकता था। तीसरे दिन जब सामने सड़क के अगले मोड़ पर क़ाफ़िला जाता नज़र आ रहा था, निर्मल ने सड़क के किनारे एक नौजवान लड़की को मिट्टी और रेत में लथपथ पड़े हुए देखा। वह यह सोचकर ठहर गया कि शायद यह लड़की मर चुकी हो या कम-से-कम बेहोश हो और इसकी फटी हुई साड़ी के पल्लों में अब तक कुछ दाने चावल के बंधे हुए हों…

लड़की शायद मरी नहीं थी, क्योंकि उसके सपाट सीने में अब भी कभी-कभी सांस की हलकी-सी लहर उठती थी—इतनी हलकी, जैसे तालाब की शांत सतह पर हवा के झोंके से एक हलकी-सी लहर पड़ जाए। लड़की का सिर एक तरफ़ को ढलका हुआ था, उसकी मुट्ठियां ज़ोर से भिंची हुई थीं, जैसे ऐंठन का दौरा पड़ा हो। निर्मल ने जल्दी-जल्दी से साड़ी के पल्लुओं को झाड़ा—खाने की कोई चीज़ कहीं बंधी हुई न मिली। फिर इधर-उधर नज़र दौड़ाई कि शायद आस-पास कुछ पड़ा हो, मगर वहां सिवाय सड़क के किनारे की धूल के और कुछ नहीं था—महीन रेतीली धूल, जो उस लड़की के उलझे हुए बालों में अटी हुई थी, जिसका पाउडर उसके पीले, सूखे, पिचके हुए, गालों पर लगा हुआ था। 'हूंह, मरने दो इसे और चलो!' निर्मल ने सोचा और उसके भूखे

पेट की अंतड़ियों ने याद दिलाया कि उसे फ़ौरन कहीं-न-कहीं खाने की कोई चीज़ तलाश करनी चाहिए—चाहे वह किसी पेड़ के पत्ते ही क्यों न हों, घास ही क्यों न हो, कोई मरा हुआ पक्षी ही क्यों न हो ! मगर जाते-जाते उसने घूमकर एक नज़र फिर उस बेहोश लड़की पर डाली। न जाने क्यों उसे ऐसा महसूस हुआ, जैसे उसने इस लड़की को पहले कहीं देखा हो। मगर कहां ? उसे तो इस वक्त यह भी याद नहीं था कि इससे पहले उसने किसी लड़की को भी कहीं देखा है···फिर उसके दिमाग़ के पर्दे पर एक धुंधली-सी तसवीर क्यों उभर रही थी ? इतनी धुंधली कि वह उसे पहचान न सकता था। उसके कानों में दूर से किसी जाने-पहचाने नाम की हल्की-हल्की गूंज क्यों सुनाई पड़ रही थी ? जैसे किसी दूसरी दुनिया से कोई आवाज़ दे रहा हो। और उसके अपने दिल की धड़कन क्यों तेज़ हो गई थी ? भूख की शिद्दत से उसे फिर दिल का दौरा पड़ रहा था या इस लड़की से उसका अपना कोई संबंध था ? यह लड़की कौन है ? यह लड़की कौन है ? क्या मैंने पहले इसे कहीं देखा है ?

कहां ? कब ? कैसे ? धुंधले-धुंधले प्रश्न-चिह्न उसके दिमाग़ में उभरते रहे, बनते रहे, मिटते रहे—मगर जल्द ही उसके भूखे पेट का बुनियादी प्रश्न-चिह्न इन सब सवालों को समेटता हुआ उसकी चेतना पर, उसके दिल और दिमाग़ पर छा गया। और उस पल में ... के किनारे पड़ी हुई वह लड़की उसे इतनी ही अजनबी और बेकार ... बेजान लगी, जैसे सड़क के किनारे पड़े हुए पत्थर या वे सूखे हुए पेड़, जिनकी डालियों पर से हरियाली की आख़िरी कोंपल भी नोच ली ... थी। अपने बदन को घसीटता निर्मल फिर चल खड़ा हुआ···

और मैं चिल्लाता ही रह गया, "अरे ओ निर्मल, तू कहां जा रहा है ? यह तेरी आशा है ! तेरी आशा ! तेरी प्रियतमा ! वही ...

जिसको साथ लेकर तू जमींदार के बाग से कच्चे-पक्के आम तोड़कर लाता था और फिर तुम दोनों उन आमों को कमल के फूलों से ढके हुए तालाब में धोते थे और तू आशा के हाथ से आधा चूसा हुआ आम छीनकर खुद चूसने लगता था और उस आम की खटास में भी तुझे एक अजीब मजा आता था, जैसे आशा की सारी मिठास ओंठों द्वारा आम के रस में घुल गई हो !···क्या तू इसे नहीं पहचानता ? क्या तूने अपना प्रेम, अपनी जवानी, अपने बचपन—सबको भुला दिया है ?"

मगर निर्मल ने कोई जवाब न दिया। वह धीरे-धीरे सीधा चलता रहा। मेरे आवाज देने पर भी वह न रुका। मैं चिल्लाया, मगर उसने पीछे मुड़कर न देखा। मैंने चीखकर कहा, "मैं तुझे हुक्म देता हूं कि ठहर जा, अपनी प्रियतमा को गोद में उठा, इसके सूखे हुए ओंठों में अपने प्यार-भरे लबों से जान डाल, इसे कंधे पर उठाकर चल। इसके बिना तेरा जीवन बेकार है, इसलिए कि वह तेरी प्रियतमा है, तेरी जान है, तेरे दिल की धड़कन है, तेरे सपनों की रानी है···अगर मरना ही है, तो तुम दोनों को एक-दूसरे की गोद में एक साथ मरना चाहिए, ताकि तुम्हारी मौत भी अमर हो जाए—लैला-मजनूं की तरह, शीरीं-फ़रहाद और सोहनी-महिवाल और हीर-रांझा की तरह···"

मगर निर्मल ने मेरी एक न सुनी। चावलों के कुछ दानों के पीछे अपनी प्रियतमा को छोड़कर, उसे भुलाकर, चला गया।

मैं फिर चिल्लाया। गुस्से से मेरी आवाज़ कांप रही थी, "निर्मल ! तू मेरी सृष्टि है, मैं तेरा भगवान हूं। मैंने तुझे अपनी कल्पना से पैदा किया है। तू मेरा हुक्म नहीं टाल सकता !"

मगर निर्मल ने अपने भगवान की पुकार भी न सुनी और उसे रोकने के लिए मुझे उसके पीछे दौड़ना पड़ा।

जब मैं हांपता-कांपता उसके पास पहुंचा, तो निर्मल मोटर में बैठे हुए कुछ सफ़ेदपोश आदमियों से भीख मांग रहा था :

"बाबूजी, ज़रा-सा भात दे दो, नहीं तो मर जाऊंगा !"

यह देखकर मैं गुस्से और नफ़रत और शरम से कांप उठा। मेरा

दा किया हुआ इन्सान और दूसरों के सामने हाथ फैलाए ! क्या मैंने सके दिल में स्वाभिमान और खुद्दारी के क़ीमती तत्व नहीं रखे थे ? ने डाटकर कहा, "निर्मल, तुझे शरम नहीं आती ? चावल के कुछ दानों ; लिए भीख माग रहा है ! कहा है तेरा आत्माभिमान ?"

निर्मल ने मेरी तरफ़ मुड़कर न देखा, मगर उसकी गिड़गिड़ाहट में रे सवाल का जवाब भी था।

'बाबा ! दया करो—पांच दिन का भूखा हूं !"

और मैंने डाटकर कहा, "भूखा है, तो क्या हुआ ? एक बहादुर और स्वाभिमानी इन्सान की तरह जान दे दे, मगर भीख मत माग ! भूख तेरे आत्मसम्मान, तेरी इज्जत और तेरी महान मनुष्यता को नहीं कुचल सकती !"

और इस बार फिर उसकी गिड़गिड़ाती हुई आवाज़ में मेरा जवाब भी था, "भूख बड़ी बला है, बाबा !"

मोटर में बैठे हुए आदमियों ने एक थैले में से एक सूखी हुई डबल-रोटी निकाली और निर्मल को दे दी। उसको पाते ही निर्मल की बुझी हुई आखों में जिंदगी आ गई। उसने रोटी को कई बार छूकर, दबाकर, सूंघकर देखा, जैसे विश्वास करना चाहता हो कि यह सचमुच खाने की डबल-रोटी है, रास्ते का पत्थर नहीं है, जिसे उसकी भूखी कल्पना ने डबल-रोटी की शक्ल दे दी है। फिर भी यक़ीन नहीं आया, तो एक भूखे कुत्ते की तरह उसने दातों से एक बड़ा-सा टुकड़ा तोड़ा और उसे जल्दी-जल्दी चबाकर देखा। तब जाकर उसे विश्वास हुआ कि वह सचमुच डबल-रोटी है। फिर एकाएक वह औंधे मुह ज़मीन पर गिर पड़ा। उसे यों नत-मस्तक होते देख, मोटरवाले खिलखिलाकर हंस पड़े और मैं शरम से पानी-पानी हो गया कि मेरा इन्सान, जिसे मैंने भगवान से टक्कर लेने के लिए पैदा किया था, आज दूसरे इन्सान के

सामने सड़क पर [illegible] हो रहा है!

और फिर मोटरगाड़ी में से [illegible] एक मोटे आदमी की भेंगी आंखों में एक अजीब चमक पैदा हुई और उसने निर्मल को इशारे से पास बुलाकर कहा, "एक बात तो बताओ !"

निर्मल रोटी चबाते हुए बोला, "जी कहो, बाबू। तुमने मेरी जान बचाई है। मैं तुम्हारी क्या सेवा कर सकता हूं ?"

भेंगी आंखों ने इधर-उधर नज़र दौड़ाई और सड़क को सुनसान पाकर निर्मल से पूछा, "कोई जवान सी लड़की देखी है आस-पास ? क्या जानते हो ?"

और इससे पहले कि मैं उसे [illegible] कर सकूं, निर्मल का जवाब उसकी ज़बान से निकल चुका था, "हां, बाबूजी, एक देखी तो है…पीछे, कोई मील भर पर, सड़क के किनारे पड़ी है—बेहोश, पर जल्दी करो, कहीं मर न जाए।"

और पलक झपकते वह मोटर गर्द उड़ाती हुई गायब हो गई। अब तो मैं गुस्से के मारे आपे से बाहर हो गया, "ओ नीच आदमी ! मुझे शरम आती है कि तू मेरी कल्पना से पैदा हुआ है। जानता है, ये लोग कौन हैं ? और क्यों जवान लड़कियों की तलाश में घूम रहे हैं ? जानता है तूने क्या किया है ? सूखी हुई डबल-रोटी के बदले तूने अपनी इज्ज़त, आबरू और इन्सानियत बेच दी है…"

मगर निर्मल सूखी रोटी को चबाने में इतना व्यस्त था कि उसने मेरी तरफ़ बिलकुल ध्यान नहीं दिया। हां, मैंने यह ज़रूर महसूस किया कि जैसे-जैसे उसकी सिकुड़ी हुई, सोई हुई अंतड़ियां फिर काम कर रही थीं, निर्मल की आंखों में से वह अमानुषिक पशुता दूर होती जा रही थी। उसकी चेतना से स्मृतियां इस तरह सिर उठा रही थीं जैसे कोई सुंदरी अंगड़ाई लेकर कसमसाती हुई उठती है, जैसे उसकी आशा…

आशा !

आशा ?

ओ भगवान ! आशा !

रोटी के आखिरी कौर के साथ एक भयानक विचार बिजली की तरह उसके दिमाग में कौंधा। "नहीं नहीं !" उसके दिल ने आवाज़ दी। "ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा नहीं हो सकता! कभी नहीं!··· कभी नहीं!"

वह मुड़कर पीछे भागनेवाला ही था कि उधर से वही मोटर लौटती हुई नज़र आई—चार सफ़ेदपोश आदमी और उनके साथ एक मिट्टी में सनी, चीथड़ों में लिपटी हुई जवान लड़की।

"माया !" "माया !" वह चिल्लाया, जब मोटर उसके पास से गुज़री। और वह उसके पीछे भागने लगा।

"क्या है ?" एक सफ़ेदपोश ने उससे पूछा, जब वह हाँपता हुआ मोटर के पास पहुँचा। एक पल के लिए निर्मल कोई जवाब न दे सका।

लड़की को होश आ चुका था। वह एक सूखी हुई डबल-रोटी का टुकड़ा चबा रही थी। उसका सारा ध्यान उस रोटी पर था। उसने नज़र उठाकर भी उस चिल्लाने की तरफ़ न देखा, जो पागलों की तरह "माया ! माया !" चिल्लाता हुआ मोटर के पीछे दौड़ता आया था। और वह देखती भी क्यों? उसका नाम माया थोड़े ही था। उसका नाम था क्या? उसका कोई नाम था भी? उसे कुछ याद न था··· और न उसे कोई परवाह थी। उस समय उस रोटी के सिवा दुनिया की किसी चीज़ की उसे परवाह न थी।

"माया !" निर्मल चिल्लाया, "मोटर से नीचे उतर आओ। ये बुरे लोग हैं, ये तुम्हें बेच डालेंगे। आओ, माया! मेरे साथ आओ। हम दोनों इकट्ठे चलेंगे।"

लड़की ने एक क्षण के लिए निर्मल की तरफ़ देखा, मगर उसकी सूखी, बुझी हुई आँखों में पहचान की कोई चमक पैदा न हुई। फिर वह एक सफ़ेदपोश की तरफ़ मुड़ी और उससे पूछा, "यह कौन है?"

के विकास का अवसर दिया। फिर आशा को 'उत्तम शिक्षा' के लिए फ्रांस, स्विटजरलैंड और इंगलैंड की सैर को भेजा और सफर से वापसी के समय इन दोनों की भेंट एअर-इंडिया इंटरनेशनल के एक हवाई जहाज में कराई।

लंदन से जब हवाई जहाज रवाना हुआ, तो एक खूबसूरत लड़की को अकेले बैठे देखकर निर्मल मुस्कराया और कोई दूसरी सीट खाली न होने का बहाना करते हुए उसने अपने बेहतरीन आधे ऑक्सफोर्ड, आधे अमरीकी लहजे में आशा से कहा, "अगर आप बुरा न मानें, तो मैं आपके बराबरवाली सीट पर बैठ जाऊं ?"

आशा ने एक नजर निर्मल के पचास पौंडवाले बढ़िया सूट पर डाली और कहा, "हां, हां, क्यों नहीं, बड़े शौक से।"

"मेरा नाम निर्मलकुमार काराभाई है," निर्मल ने लैप-स्ट्रैप बांधते हुए कहा।

"और मेरा नाम आशा आलूवाला है।"

"हाऊ डू यू डू, मिस आलूवाला ? प्लीज्ड टु मीट यू।"

शेक-हैंड करते हुए आशा की नाज़ुक, नरम और लाल पॉलिश की नाखूनवाली उंगलियों ने निर्मल के हाथ में जरूरत से ज्यादा गरमी और बेतकल्लुफी महसूस की। मगर 'सोसाइटी' में ऐसी बातों का 'नोटिस' नहीं लिया जाता। ऐसी बातों की शिक्षा पाने ही तो वह विलायत आई थी।

"तो आप काराभाई कॉटन मिल्सवाले काराभाई हैं ?"

"जी, हां। या यों समझ लीजिए कि मैं उनका छोटा बेटा हूं। और आप तो निश्चय ही सेठ आलूवाला की सुपुत्री हैं ?"

"तो क्या आप पिताजी को जानते हैं ?"

"लीजिए ! ऐसा भी कोई है, जो हिंदुस्तान के पोटेटो-किंग के नाम से परिचित न हो ?"

थोड़ी देर खामोशी रही। हवाई जहाज लंदन के एरोड्रोम को ही नहीं, इंगलिश चैनल को भी काफी पीछे छोड़ आया था और अब फ्रांस

[illegible] हो गया है? मैं

निर्मल है, निर्मल! [illegible] तुम दोनों एक ही [illegible] में पैदा हुए!

[illegible] नहीं हम इकट्ठे ही

[illegible] में खेल

[illegible] खोलकर

[illegible]"

[illegible] जैसे वह उनकी

[illegible]?" और [illegible] हुई

[illegible] ।

पलक झपकते में मेरी कल्पना ने उन दोनों को नष्ट कर दिया। भला यह भी कोई इश्क हुआ? मैंने सोचा, इस बार मैं निर्मल और आशा को ऐसे वातावरण में पैदा करूंगा, जहां वे प्रेम की परंपरा को पूरी तरह निभा सकें।

मैंने फ़ैसला किया कि चूंकि भूख प्रेम की हत्यारी है और 'पैसे बिना इश्क टें-टें' होता है, इसलिए इस बार निर्मल और आशा को ऐसे घरानों में पैदा किया जाए, जहां उनकी मुहब्बत को ग़रीबी और अकाल का शिकार न होना पड़े। बल्कि उनकी मुहब्बत को परवान चढ़ाने के लिए हर क़िस्म की आसानी और आराम मिले—यहां तक कि वे हर तरह की आर्थिक कठिनाइयों से आज़ाद होकर मुहब्बत और सिर्फ़ मुहब्बत पर अपना तमाम ध्यान दे सकें।

मैंने आशा को एक लखपति सेठ के यहां पैदा किया और निर्मल को दूसरे लखपति के यहां। निर्मल को ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी और पेरिस के नाचघरों और न्यूयार्क के नाइट-क्लबों में शिक्षा दिलवाई; आशा को नैनीताल के एक अंग्रेज़ी स्कूल, टैगोर के शांतिनिकेतन और बंबई के ताजमहल होटल के बाल-रूम में अपनी शिक्षा और व्यक्तित्व

का अवसर दिया। फिर आशा को 'उत्तम शिक्षा' के लिए
ज़रलैंड और इंगलैंड की सैर को भेजा और सफर से वापसी
न दोनों की भेंट एअर-इंडिया इंटरनैशनल के एक हवाई जहाज़
।

से जब हवाई जहाज़ रवाना हुआ, तो एक खूबसूरत लड़की
बैठे देखकर निर्मल मुस्कराया और कोई दूसरी सीट खाली न
हाना करते हुए उसने अपने बेहतरीन आधे ऑक्सफोर्ड, आधे
लहजे में आशा से कहा, "अगर आप बुरा न मानें, तो मैं आपके
ी सीट पर बैठ जाऊं ?"
ा ने एक नज़र निर्मल के पचास पौंडवाले बढ़िया सूट पर
र कहा, "हां, हां, क्यों नहीं, बड़े शौक से।"
ा नाम निर्मलकुमार काराभाई है," निर्मल ने लैप-स्ट्रैप बांधते
।
र मेरा नाम आशा आलूवाला है।"
ऊ डू यू डू, मिस आलूवाला ? प्लीज्ड टू मीट यू।"
-हैंड करते हुए आशा की नाजुक, नरम और लाल पालिश की
ली उंगलियों ने निर्मल के हाथ में ज़रूरत से ज्यादा गरमी और
ी महसूस की। मगर 'सोसाइटी' में ऐसी बातों का 'नोटिस'
ा जाता। ऐसी बातों की शिक्षा पाने ही तो वह विलायत
।
ो आप काराभाई काटन मिल्सवाले काराभाई हैं ?"
ी, हां। या यों समझ लीजिए कि मैं उनका छोटा बेटा हूं।
प तो निश्चय ही सेठ आलूवाला की सुपुत्री हैं ?"
ो क्या आप पिताजी को जानते हैं ?"
ीजिए ! ऐसा भी कोई है, जो हिंदुस्तान के पोटेटो-किंग के नाम
िचित न हो ?"
ोड़ी देर खामोशी रही। हवाई जहाज़ लंदन के एरोड्रोम को ही
इंगलिश चैनल को भी काफ़ी पीछे छोड़ आया था और अब फ्रांस

आशा के कान में कहा।

"मैंने तो आज न बालों में तेल लगाया है और न कोई सेंट ही इस्तेमाल की है।"

"अभी खुशबू इतनी मस्त करनेवाली है!"

"तो आप बिना पिए भी मस्त हो जाते हैं?"

"हां, भगवान भला करे मोरारजी देसाई का—इस शराबबंदी के ज़माने में कम-से-कम इश्क के नशे पर अभी पाबंदी नहीं लगी।"

"आप बहुत शरीर हैं!"

"नहीं, यक़ीन मानिए, मैं बहुत शरीफ़ हूं। मगर क्या करूं, आप बहुत खूबसूरत हैं।"

जब हवाई जहाज़ रोम पहुंचा और केबिन में रोशनी की गई, तो दूसरे मुसाफ़िरों ने कनखियों से देखा कि आशा लिपस्टिक दुबारा लगाकर अपने मेक-अप को ठीक कर रही है।

मुसाफ़िर उतरकर कॉफ़ी पीने रेस्तरां में गए, तो मालूम हुआ कि मौसम ख़राब होने की वजह से जहाज़ आगे नहीं जाएगा। रात उन्हें रोम के किसी होटल में गुज़ारनी पड़ेगी।

निर्मल पहले भी कई बार इस होटल में ठहर चुका था। मैनेजर उसे पहचानता था। आंख का सिर्फ़ एक इशारा ही काफ़ी साबित हुआ और निर्मल और आशा को बराबर के कमरे दे दिए गए, जिनके बीच के दरवाज़े की चिटख़नी सिर्फ़ निर्मल की तरफ़ थी। अभी आशा ने रात के कपड़े बदले ही थे कि दरवाज़ा खुला और हाथ में शैंपेन के दो गिलास लिए निर्मल दाख़िल हुआ।

"हैलो डार्लिंग!"

सिर्फ़ दस घंटे में मिस-मालूवाला से 'आशा' और आशा से 'डार्लिंग'।

"हैलो!"

"मैंने सोचा, सोने से पहले एक आख़िरी जाम हो जाए। कल तो बंबई जाकर फिर समुद्र का पानी ही पीना है!"

[illegible] मैं तुमको नहीं भूलूँगी।"

"तुम्हारी [illegible] को!"

"और इस तुम्हारी [illegible] को!"

"और इस शाम को जो [illegible] के नाम!"

और अपनी शाम की [illegible] मुलाकातों में दोनों इश्क़ की वे तमाम मंज़िलें तय कर चुके थे, जिन्हें पुराने जमाने के प्रेमी-प्रेमिका बरसों में भी तय न कर पाते थे। एयरपोर्ट पर जब वे अपनी-अपनी मोटरों में बैठने लगे, तो निर्मल ने उससे कहा, "चीरियो आशा! जल्द मिलेंगे।"

और आशा ने उससे कहा, "ज़रूर, ज़रूर। चीरियो निर्मल, फ़ोन करना।"

मोटरें रवाना हो गईं और मैंने सोचा, यह है सच्चा इश्क़! न झगड़ा, न झंझट, बस इश्क़! अब ये दोनों रोज़ एक-दूसरे से ताज में, फ़ोन में, चांदनी रात में जुहू के तट पर मिलेंगे, प्यार-मुहब्बत की बातें करेंगे। उनके बीच न समाज कोई दीवार खड़ी कर सकेगा और न ही ग़रीबी और भूख उनको अलग कर सकेगी। उनका प्यार आज़ाद है और इसलिए अटल और अमर है। यह प्रेम-कहानी ज़रूर सफलता तक पहुंचेगी।

मगर आशा घर पहुंची, तो उसका स्वागत करने के लिए उसके पिताजी, माताजी और भाई-बहनों के अलावा अधेड़ उम्र और गंजे सिरवाले सेठ लालचंद कमालचंद भी थे, जो पोटेटो किंग के भागीदार थे। उन्होंने बड़े तपाक से आशा से हाथ मिलाया और उस हाथ के दबाव में भी आशा को किसी हद तक उसी बेतक़ल्लुफ़ी का अंदाज़ महसूस हुआ, जो निर्मल के शेक-हैंड में था। मगर लालचंद कमालचंद के हाथ उम्र-भर रुपए गिनते-गिनते सख़्त और खुरदरे हो गए थे और उनकी चुभनेवाली हड्डियों के दबाव में जवानी का इशारा नहीं था, बुढ़ापे की प्रार्थना थी।

अगले रोज़ आशा निर्मल के टेलीफ़ोन का इंतज़ार कर रही थी

स्टाक-एक्सचेंज जाते-जाते उसके पिता ने उससे कहा कि उसके कुशल लौटने की खुशी मे लालचंद कमालचंद ने ताज में सब घरवालों को दावत दी है। "वह तुम्हें बहुत पसंद करता है आशा, और उम्र भी उसकी कोई खास ज्यादा नहीं है। मेरे ख़याल में तुम्हे उसके प्रस्ताव पर विचार करना चाहिए।"

आशा पिता के सामने चुप रही, मगर उसने सोचा, 'हुंह, खूसट कहीं का! शक्ल तो देखो! कहा वह और कहा निर्मल!'

रात को ताज में जब डिनर के बाद वह सिर्फ अपने पिता को खुश करने के लिए लालचंद कमलाचंद के साथ डांस करते हुए कोफ्त महसूस कर रही थी, निर्मल को आते देखकर उसका चेहरा एकदम खिल उठा।

"माफ कीजिएगा, एक दोस्त से मिल लूं।" कहकर डांस खत्म होने से पहले ही वह अपने पार्टनर की बाहों से आज़ाद होकर नाचनेवालों की भीड़ में से रास्ता चीरते हुए निकल गई।

मगर···मगर···यह निर्मल के साथ कौन थी?

"ओह, हैलो आशा! इनसे मिलो।"

एक अधेड़ उम्र की औरत, जो सेंट, पाउडर, लिप-स्टिक, कसी हुई चोली और रंगे हुए बालों की मदद से जवान नज़र आने की असफल कोशिश कर रही थी और जो निर्मल की कमर मे इतनी बेतकल्लुफ़ी और मालिकाना अंदाज़ से हाथ डाले हुए थी कि एक भयानक संदेह आशा के दिमाग मे बिजली की तरह कौंद गया।

उससे हाथ मिलाते हुए उसने कहा, "बड़ी खुशी हुई आपसे मिलकर मिसेज काराभाई।"

वह औरत यह सुनकर हंस दी, असभ्यता से, खिलखिलाकर। कितने भद्दे दांत थे उसके! "अपनी दोस्त की ग़लती तो देखो,

डार्लिंग !" उसने निर्मल से कहा ।

'डार्लिंग' उसके कान में यह शब्द गूंजकर आशा जल ही गई ।

"आशा, मुझे भूल हुई । यह फ़ीफ़ी है, मिसेज़ फटाका, मेरी बीवी नहीं ।"

आशा ने फ़ीफ़ी फटाका के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था, मगर उससे पहले मिलने का अवसर नहीं मिला था । उसकी शादी जवानी में एक अधेड़ उम्र के पारसी से हो गई थी । उसका पति अब भी ज़िंदा था और पत्नी के सारे खर्च उठाता था, मगर कई बरस से उनका देह का रिश्ता टूट चुका था । दोनों अलग-अलग बंगलों में रहते थे । सेठ फटाका उम्र के आखिरी दिन कीर्तन गा-गाकर गुज़ार रहा था और फ़ीफ़ी अपनी खोई हुई जवानी की तलाश में सोसाइटी के नौजवानों का पीछा करती रहती थी । इन दोनों को साथ देखकर अब कोई शक बाकी न रहा कि निर्मल फ़ीफ़ी का सबसे नया शिकार है । इस पल में आशा की न जाने कितनी आशाएं और उमंगें चकनाचूर हो गईं और जीवन में पहली बार वह जलकर असभ्यता से बोली, "माफ़ कीजिए, मिस्टर काराभाई, मगर मैं इन्हें आपकी बीवी नहीं, आपकी माताजी समझी थी ।"

और इससे पहले कि फ़ीफ़ी इस हमले का जवाब दे सके, आशा वहां से अपनी मेज़ पर वापस चली आई । आर्केस्ट्रा ने एक और नाच की धुन शुरू कर दी थी—'ओ माई डार्लिंग ! ओ माई डार्लिंग !' फ़ीफ़ी और निर्मल एक-दूसरे की बांहों में झूलते हुए नाच रहे थे । निर्मल के अंदाज़ में कुछ झुंझलाहट थी, मगर फ़ीफ़ी उससे चिपटी हुई थी, जैसे उसे डर हो कि कोई उससे निर्मल को छीनकर ले जाएगा ।

"निर्मल काराभाई को तुम जानती हो ?" आशा के पिता ने पूछा ।

"जी हां, हवाई जहाज़ में भेंट हुई थी । बड़ा दिलचस्प आदमी है । बातें खूब करता है ।"

"हां, अब तो बातें ही बना सकता है !" लालचंद ने कहा ।

"जी, क्या मतलब ? मैं समझी नहीं ।"

तब उसके पिता ने उसे बताया कि सेठ काराभाई ने अपने छोटे बेटे को उनकी फ़िज़ूलखर्ची और ऐयाशियों की वजह से अपनी जायदाद से बेदखल कर रखा है। पिता के मरने पर भी उसे फूटी कौड़ी भी नहीं मिलेगी।

"नहीं! यह कैसे हो सकता है?" आशा बोली, "वह रहता तो बड़ी शान से है। हर साल विलायत जाता है। ये बढ़िया कपड़े, मोटर, यह सब कहां से आता है?"

"कहा से आता है?" लालचंद ने अपने पीले दांतों की नुमाइश करते हुए ये शब्द दुहराए और फिर ज़रूरत से ज़्यादा झुककर आशा के कान में कहा, "बहुत ज़रिये हैं। ब्रिज, फ्लाश, पोकर और फीफी फटाका!" और यह कहकर उसने अपने गंजे सिर का इशारा हॉल के उस कोने की तरफ़ किया, जहां निर्मल फीफी को रंबा की चकफेरियां दे रहा था और आर्केस्ट्रा के साथ आवाज़ मिलाकर गा भी रहा था—'ओ माई, डार्लिंग! ओ माई डार्लिंग!'

आशा ने लालचंद से कहा, "मेरा जी मतला रहा है। शायद गरमी बहुत है। चलिए, बाहर की ठंडी हवा में कुछ देर टहल लें।"

कुछ दिन में उनके 'इंगेजमेंट' का ऐलान हो गया। बड़ी शानदार पार्टी हुई। लालचंद ने पचीस हज़ार की हीरों-जड़ी अंगूठी अपनी मंगेतर को उपहार में दी। निर्मल भी पार्टी में आया और एक मिनट के लिए आशा को अकेला पास आकर पाकर कहने लगा, "मुबारक हो, आशा!" और उसके कान में धीरे-से, "जब कभी ज़रूरत हो, मुझे न भूलना!"

छः महीने बाद शादी हो गई। मगर शादी की दावत में निर्मल न आया, क्योंकि वह फिर विलायत की सैर के लिए गया हुआ था। लालचंद कमालचंद ने भी हनीमून के लिए स्विटज़रलैंड जाना तय किया। बंबई से क़ाहिरा, वहां से रोम। रोम में कई नए मुसाफ़िर हवाई जहाज़ में चढ़े। मगर जब आशा और उसका पति रेस्तरां से लौटे, तो सब अपनी-अपनी जगह बैठ चुके थे। आशा ने देखा कि

[illegible] बेंच पर, जो अब तक खाली थी, एक जोड़ा आकर बैठ गया है—एक मर्द और एक लड़की। मगर पीछे से शक्लें नजर न आई थीं।

अगली बेंच से एक लड़की की आवाज आई, "राज, आप बहुत शरीर हैं…"

और फिर एक जानी-पहचानी आवाज, "नहीं, यकीन मानिए, मैं बहुत शरीफ हूं। मगर क्या करूं, आप बहुत खूबसूरत हैं!"

तीसरी बार फिर मुझे अपनी सृष्टि का नाश करना पड़ा। लानत हो इन प्रेमियों और प्रेमिकाओं पर! एक पल आपकी नजर चूकी और ये लगे इश्क के शाही रास्ते को छोड़कर जिंदगी की टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों पर भटकने! या शायद प्रेम को न ग़रीबी रास आती है और न बहुत अमीरी। इस बार मैंने निर्मल और आशा को मध्यम-वर्ग में पैदा किया। निर्मल को एक दफ़्तर में डेढ़ सौ का क्लर्क करा दिया, आशा को सिर्फ़ मैट्रिक तक शिक्षा दिलवाई।

इस बार निर्मल और आशा बंबई की एक चाल में दूसरे माले पर रहते थे। शाम को जब निर्मल दफ़्तर से थका-हारा लौटता, तो दूर से ही बालकनी में आशा को खड़ी देखकर उसके मन की कली खिल जाती। अब उसने शाम को सिनेमा जाना भी कम कर दिया था, क्योंकि परदे पर फ़िल्मी सितारों की परछाईं देखने से आशा को असली रंग और रूप में देखना कहीं बेहतर था। उसे मालूम था कि आशा भी उसे पसंद करती है, वरना नियमित रूप से हर शाम को उसके दफ़्तर से आने के समय अपने कमरे के सामने क्यों खड़ी रहती है? निर्मल अगर अपने कमरे में खड़े होकर दीवार से कहे कि आज तो घर में शक्कर ही नहीं, चाय कैसे पी जाए? तो आशा फ़ौरन अपने पिता से कहती, "दादा, निर्मलराव के यहां शक्कर नहीं है, एक प्याली चाय भिजवा दूं?" और

उसका पिता, जो निर्मल को बहुत पसद करता था, फौरन कहता, "हां-हां, जरूर। मंजु से कहो, एक प्याली चाय दे आए।" और जब छोटी बहन प्याली लेकर चलती, तो आशा खामखाह चिल्लाकर कहती, "अरी मंजु! सम्हाल कर उठा, तू प्याली जरूर गिराकर तोड़ेगी। ठहर, मुझे दे..."और फिर वह खुद प्याली लेकर जाती। और हर बार पहला घूंट पीकर निर्मल किसी फिल्म मे सुना हुआ वाक्य जरूर दोहराता, "चाय बहुत मीठी है, आशा, लगता है तुमने अपने हाथ से बनाई है।"

और आशा झेंपकर वहां से चली आती और बहन से चिल्लाकर कहती, "निर्मलराव चाय पी लें, तो प्याली ले आइयो। कहीं चाय के साथ हमारी प्याली भी न हजम कर जाएं!"

मैट्रिक की परीक्षा पास आई, तो एक दिन उसके पिता ने निर्मल से जिक्र किया कि आशा इतिहास और भूगोल में जरा कमजोर है और मौक़ा पाकर निर्मल ने कहा, "इतिहास और भूगोल तो बड़े ही आसान हैं। इन्हीको लेकर तो मैंने बी० ए० किया था।" अब तो आशा के पिता को कहना पड़ा, "अगर तुम्हें बहुत तकलीफ न हो, तो शाम को घंटा-भर उसे पढ़ा दिया करो।"

और उस दिन से तो इन दोनों को रोजाना मिलने और बात करने का एक बाकायदा बहाना मिल गया। शुरू-शुरू में तो पढ़ाई के वक्त आशा की माता या उसके पिता की मौजूदगी जरूरी थी। मगर जल्द ही हिंदुस्तान की खनिज पदार्थों की पैदावार और पानीपत की तीन लड़ाइयों के जिक्र से उन दोनों का जी उकता गया। इनके अलावा निर्मल का आचरण और रख-रखाव इतना सभ्य था कि पढ़ाई के वक्त किसी तीसरे की मौजूदगी जरूरी नहीं समझी गई। इसके बाद यह स्वाभाविक था कि शाहजहां और मुमताजमहल के ऐतिहासिक प्रेम में इन दोनों को व्यक्तिगत और मनोवैज्ञानिक दिलचस्पी पैदा होने लगे और जलवायु का जिक्र करते-करते बात दिलीपकुमार और कामिनी कौशल के नाम [illegible] तक पहुंच जाए और बातों-बातों में शुरू अपनी

शिष्या में यह भी कह जाए कि उसकी आंखें नरगिस की आंखों से भी ज्यादा खूबसूरत हैं।

फिर एक दिन हिम्मत करके निर्मल बालों में लगाने को मोतिया के फूलों की वेणी ले आया। "पांच रुपए का नोट भुनाना था, फूलवाले ने कहा, 'बाबूजी, दो-चार आने का हार-गजरा लो, तो छुट्टी दिए देता हूं।' तो मैंने सोचा, तुम्हारे लिए एक वेणी ही ले चलूं। तुम्हारे जूड़े में लगती भी तो बहुत खूबसूरत है!" और आशा ने फूलों की लड़ी को अपने बालों में लगाते हुए कहा, "कितनी अच्छी खुशबू है इन फूलों में! रात-भर ये महकते रहेंगे।" निर्मल ने बिना कोई फ़िल्मी संवाद सोचे कहा, "और तुम्हें मेरी याद दिलाते रहेंगे।" और उस दिन से निर्मल के लिए हर रोज़ ही पांच रुपए का नोट भुनाना और चार आने की वेणी खरीदना जरूरी हो गया।

जिस दिन आशा की परीक्षा का फल निकला, आशा के पिता ने अकेले में निर्मल से कहा, "तुम्हारी मेहरबानी से आशा पास तो हो गई है और वह भी सेकंड क्लास में। अब तो उसके ब्याह की फ़िक्र है। सोचता हूं, कोई अच्छा-सा वर मिल जाए, तो···" और फिर कुछ हिचकिचाते हुए, "तुम अपनी सुनाओ, निर्मल? शादी-ब्याह के बारे में क्या इरादा है?" और जब निर्मल सोच में पड़ गया, तब उसने उससे कहा, "तुम तो जानते ही हो कि आशा की मां और मैं, दोनों तुम्हें कितना पसंद करते हैं···"

निर्मल ने कहा, "मैं इस इतवार को घर जा रहा हूं। पिताजी से पूछकर सोमवार को आपको जवाब दूंगा।"

और मैंने सोचा, चलो इस बार तो निर्मल और आशा के इश्क़ की बेल मढ़े चढ़ती नज़र आती है।

निर्मल इतवार को अपने गांव गया, तो अपने पिता से जिक्र किया। वह पचास रुपए माहवार पर स्कूल में पढ़ता था। यह सुनकर वह सोच में पड़ गया और फिर बोला, "अच्छी बात है। मैं दो दिन की छुट्टी लेकर शहर आऊंगा और तब लड़की के बाप से शादी

बातचीत करूंगा।"

निर्मल बबई वापस आया, तो उसने देखा कि आशा ने होनेवाले रिश्ते की वजह से उसके सामने आना और बात करना बंद कर दिया है। शायद उसकी मा ने मना कर दिया हो। मगर इस दूरी और अलहदगी में भी कितनी मीठी, रूमान-भरी यादानो थी! कभी-कभी चाल के बरामदे में अचानक उनकी मुठभेड़ हो भी जाती, तो आशा के गाल लाज के मारे तमतमा उठते और वह उलटे पैरों भागकर अपने कमरे का दरवाजा बद कर लेती और फिर किवाड के पीछे से निर्मल को भाकती। और निर्मल? वह तो अपने पिता के आने, शादी के तय होने और फिर शादी होने के दिन गिन रहा था! कितना मीठा था यह इतजार!

निर्मल का पिता आया और आशा के घरवालो ने बड़े तपाक से उसका स्वागत किया। रस्मी बातचीत के बाद निर्मल के पिता ने बेटे को वहा से उठ जाने का इशारा कर दिया और दोनो पिताओं में, एकात में बातचीत होने लगी।

निर्मल के पिता ने पूछा कि आशा का पिता दामाद को दहेज मे कितना रुपया देने को तैयार है?

आशा के पिता ने ठडी साम भरकर कहा, "दहेज में तो हम सिवाय दो-चार कपड़ों और छोटे-मोटे जेवरों के कुछ भी न दे सकेंगे।" फिर उसने अपनी आर्थिक कठिनाइयो का जिक्र किया। छोटी-सी दूकान, वह भी आजकल के तंगी के जमाने में। उस पर कट्रोल की मुश्किलें। बड़ी कठिनाई से इतने बड़े कुटुंब का गुजारा होता है।

निर्मल के पिता ने कहा, "तब तो मुझे अफ़सोस है। यह रिश्ता न हो सकेगा। मेरी अपनी कुछ ऐसी ही मजबूरिया हैं।"

आशा, जो किवाड़ों के पीछे छिपी हुई यह सब सुन रही थी, धक-

में पड़ गई। अब क्या होगा? मगर नहीं! उसका निर्मल ज़रूर अपनी मुहब्बत को निभाएगा। अपने पिता की तरह वह हरगिज़ पाप का समर्थन न करेगा।

और रात को जब बाप-बेटे अकेले हुए और निर्मल को अपने पिता का फ़ैसला मालूम हुआ, तो उसने बेशक अपनी मुहब्बत निभाई। उसने पिता से साफ़-साफ़ कह दिया, "अब दहेज-जैसे पुराने ढकोसलों को छोड़ दीजिए और रुपयों के लालच में दो ज़िंदगियों को तबाह न कीजिए। क्या आपने शांताराम का फ़िल्म 'दहेज' नहीं देखा?"

उसके पिता ने जवाब दिया, "फ़िल्म देखने के लिए मेरे पास फ़ालतू पैसे कहां है!" और फिर उसने बेटे को वह भेद की बात बताई, जो आज तक उसने छिपाई हुई थी। उसने साहूकार से दो हज़ार क़र्ज़ ले रखा था, जो ब्याज मिलाकर अब तीन हज़ार के लगभग हो गया था। और उस क़र्ज़ को उतारने का सिर्फ़ एक ही उपाय था और वह यह कि निर्मल का ब्याह किसी ऐसी जगह किया जाए, जहां से दहेज में अच्छी, तगड़ी रक़म मिलने की आशा हो। "तुम बी० ए० हो, अच्छी नौकरी पर हो, तुम्हारे रिश्ते से तीन हज़ार तो मिलना ही चाहिए।" उसने कहा।

"मगर पिताजी, इतना रुपया आपने क़र्ज़ लिया किसलिए?"

और बाप को कहना पड़ा, "तुम्हारी पढ़ाई के लिए, निर्मल! और किसलिए? वरना तुम बी० ए० किस तरह कर पाते?"

पिता की यह बात सुनकर निर्मल के प्रेम की आग ठंडी पड़ गई और उसे कहना पड़ा, "पिताजी, क्षमा कर दीजिए। मगर मुझे यह सब मालूम न था।"

अगले महीने निर्मल की शादी उसके गांव के सुनार की मोटी और अनपढ़ बेटी से हो गई। न निर्मल ने ज़हर खाया, न आशा ने। दहेज में सिर्फ़ डेढ़ हज़ार की रक़म मिली, जो साहूकार को दे दी गई। मगर बाक़ी रक़म और ब्याज मिलाकर दो हज़ार की रक़म अब भी बाक़ी है।

आशा की शादी भी एक ग़रीब, मैट्रिक पास लड़के से हो गई, जो डाकखाने में पोस्टमैन है और जगह न मिलने की वजह से फिलहाल आशा के पिता के पास ही घर-जमाई बनकर रहता है। निर्मल ने लाख कोशिश की कि किसी दूसरी चाल में खोली मिल जाए, मगर अंत में वह अपनी बीवी को इसी चाल में लाने पर मजबूर हुआ। आशा और निर्मल की बीवी, दोनों में काफी दोस्ती हो गई है और जब मर्द काम पर चले जाते हैं, तो दोनों बैठी बातें करती रहती हैं—और अपने होने-वाले बच्चों के लिए नन्हे-नन्हे कपड़े सीती रहती हैं…

और इस बिलकुल ग़ैर-रूमानी दृश्य को देखकर मुझे एक बार फिर अपनी सृष्टि को अपनी कल्पना की तलवार से क़त्ल कर देना पड़ा।

अंतिम बार आशा और निर्मल की सृष्टि करने के बाद मैंने उन्हें उनके हाल पर छोड़ दिया—चाहे प्रेम करें या न करें। फिर मैं इन्हें बिलकुल भूल गया और अपनी कहानियों के लिए दूसरे पात्रों की सृष्टि में व्यस्त हो गया।

और फिर बरसों बाद मैंने एक बूढ़े आदमी और एक बूढ़ी औरत को बाज़ार में जाते देखा। आदमी के चेहरे पर झुर्रियां थीं और उसकी कमर झुकी हुई थी। औरत के सफेद बालों में मेंहदी लगी हुई थी और उसके हाथ चक्की चलाने और मसाला पीसने से सख्त और खुरदरे हो गए थे। वे दोनों बाज़ार से राशन और तरकारी खरीदकर घर जा रहे थे। उनकी शक्लें काफी बदल चुकी थीं। कोई दूसरा होता, तो कभी उनको न पहचान सकता। मगर मैं अपनी सृष्टि को कैसे भूल सकता हूं! बूढ़े निर्मल के हाथ में एक थैला था, जिसमें राशन के गेहूं, चावल और तरकारियां भरी हुई थीं। थोड़ी दूर जाकर बूढ़ी आशा ने कहा, "लाओ मुझे दे दो। तुम थक गए होगे।" यह कह उसने वह थैला निर्मल के हाथ से ले लिया। और जब उन दोनों ने एक

[illegible] मुस्कान की चमक थी, जो [illegible]

[illegible] तक भी उनकी मुस्कान [illegible] नहीं हुई थी ! [illegible] मगर पूरी कहानी क्या थी ? ये दोनों कैसे मिले और कैसे उनकी मुस्कान परवान चढ़ी ? और किन-किन मुश्किलों और परेशानियों से उनको दो-चार होना पड़ा था ? उनके प्रेम की कितनी परीक्षाएं ली गई थीं ?

यह सब मालूम करने के लिए मैं उनका पीछा करता हुआ गलियों-गलियों होता हुआ उनके मकान पर पहुंचा । जैसे ही निर्मल और आशा दाखिल हुए, उनके बच्चों ने चीं-चीं, चीं-चीं शुरू कर दी । बहुत देर तक किसी ने कुंडी खटखटाने की तरफ़ कोई ध्यान नहीं दिया । जब बच्चों का शोर कम हुआ, तब जाकर बुढ़िया ने कुंडी खटखटाने की आवाज़ सुनी । "अरे ओ गोपाल, मोहन, राजू ! कोई देखो—दरवाज़े पर कौन है ?"

बच्चों के जुलूस में मुझे उस टूटे हुए मोढ़े तक ले जाया गया, जिस पर बैठा हुआ निर्मल खांस रहा था । अपनी बूढ़ी चुंधी आंखों से मुझे घूरते हुए उसने कहा, "बैठो भाई, बैठो । चाय पियोगे ?"

और बूढ़ी आशा अपने पति के सामने हुक़्क़ा रखते हुए बोली, "हां-हां, क्यों न पिएंगे । ये बाबू लोग तो दिन में दस-दस, बारह-बारह प्यालियां चाय की पी जाते हैं !"

"मैं आप दोनों से कुछ पूछना चाहता हूं," मैंने कहा ।

"हां, हां, भाई, शौक़ से पूछो ।"

"आप दोनों की शादी को कितने बरस हुए हैं ?"

अपनी झुर्रियों के बावजूद आशा शरमा गई, जब बूढ़े ने उसकी तरफ़ मुड़कर कहा, "क्यों राजो की अम्मा, कितने बरस हुए हैं ? मुझे तो ऐसा लगता है, जैसे कल ही की बात हो ।"

"हाय, तुम्हें लाज नहीं आती ! दस तो पोतियां हैं तुम्हारे ।"

फिर बूढ़े ने कहा, "कोई चालीस बरस हुए होंगे, बाबूजी ! मगर

तुम्हें हमारी शादी की तारीख की क्योंकर फिक्र पड़ी ?"

मैं कहना चाहता था कि मैं तुम्हारा सृष्टिकर्त्ता हूं, इसलिए—मगर फिर मैंने कहा इतना ही, "मैं कहानियां लिखता हूं, इसलिए आपकी ज़िंदगी के बारे में कुछ जानना चाहता हूं।"

खूं, खू, खू ! हुक्का गुड़गुड़ाता, खांसता और हंसता हुआ बूढ़ा बोला, "हमारी भी कोई ज़िंदगी है, बाबूजी ? पैदा हुए, जवान हुए, मेहनत-मज़दूरी की, शादी की, बच्चे पैदा किए। अब बच्चों के भी बच्चे हो गए।—बस, मरना रह गया है !"

"नहीं, नहीं, मैं यह बात नहीं, आपकी मुहब्बत के बारे में जानना चाहता हूं।" मैंने जल्दी से कहा, "आप अपनी बीवी से पहली बार कैसे मिले ? कैसे आपका प्रेम हुआ ?"

बुढ़िया ने तो शरम के मारे ओढ़नी सिर पर सरका ली और बूढ़ा गुस्से के मारे मोढ़ा छोड़कर खड़ा हो गया। "मुहब्बत !··· प्रेम !····" वह खांसता हुआ चिल्लाया, "यह क्या दिल्लगी है ! हमारा मज़ाक उड़ाने आया है···जानता नहीं, यहां शरीफ आदमी रहते हैं !"

यह कहकर वह हुक़्क़े की नली लेकर मुझे मारने ही वाला था कि मैं वहां से भागा—और तब से अब तक भागता ही चला आ रहा हूं··· इसीलिए सांस फूला हुआ है। अब आप ही बताइए, प्रेम-कहानी लिखूं, तो कैसे लिखूं ?

• • •